

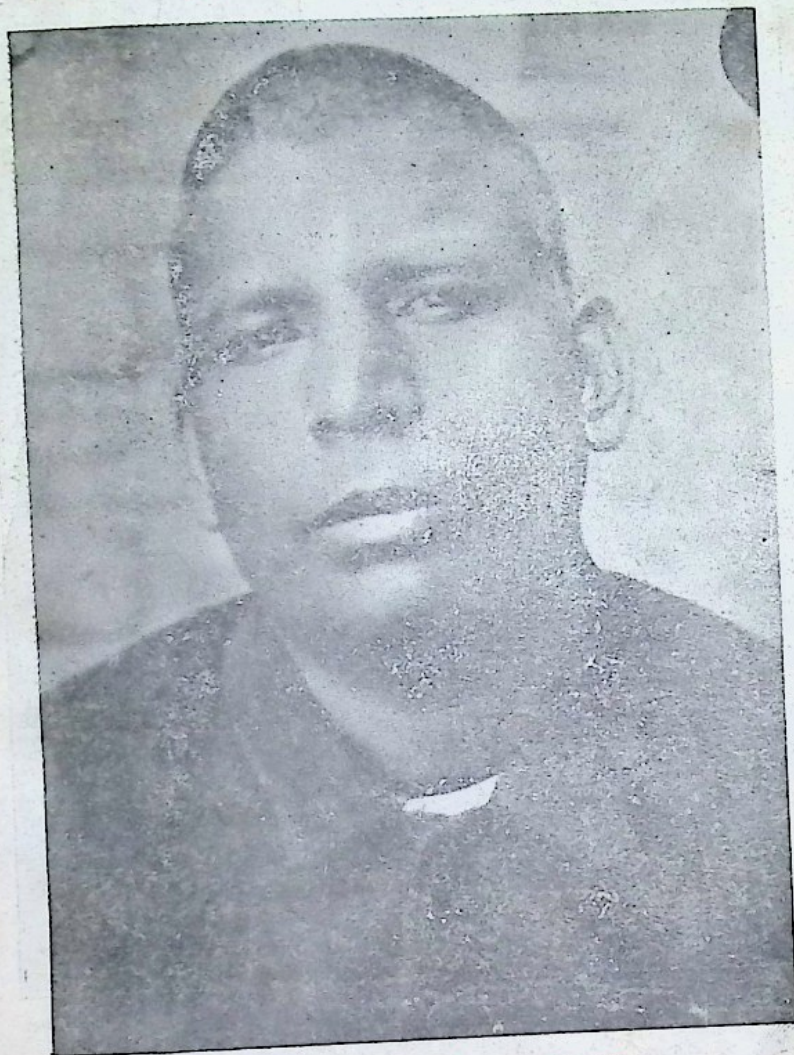
॥ ओ३म् ॥

जन ज्ञान

(मासिक)

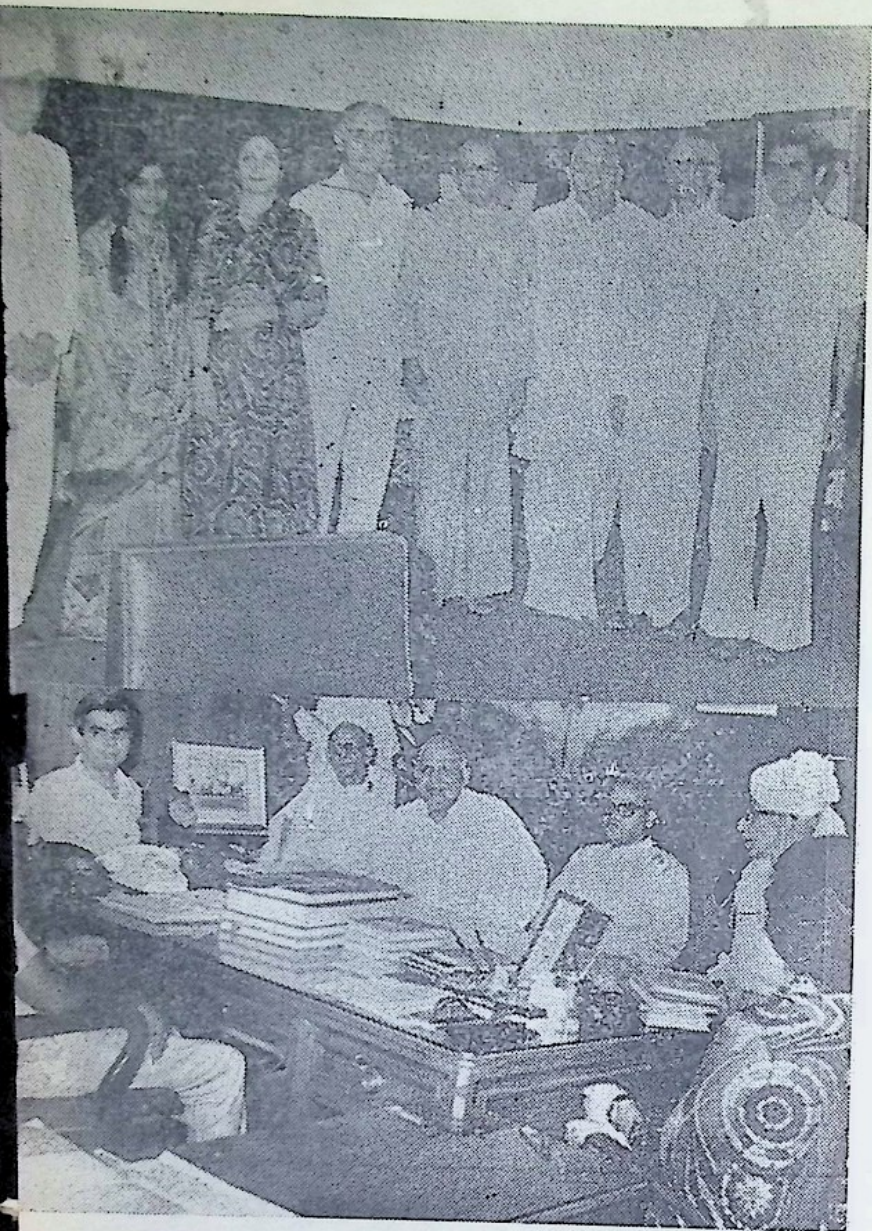
अगस्त

१९७८



स्वतन्त्रता संग्राम के सहान् सेनानी :
सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी स्व० पं० गया प्रसाद शुक्ल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi



दिल्ली के उपराज्यपाल को दयानन्द-संस्थान की ओर से वेद और
वैदिक साहित्य भेंट करने के दो चित्र ।



महर्षि दयानन्द



जन - ज्ञान

[साप्ताहिक]

सम्पादक

सुमेधा

दूरभाष : ५६६६३६

पता

१५६७, हरद्वानसिंह मार्ग

[निकट ३१-नाईवाला]

करोल बाग, नई दिल्ली-५

वार्षिक शुल्क २०)

विदेश में ६ पौंड

(विमान से)

४ पौंड : समुद्री डाक से

(आजीवन ३०१)

एक प्रति : २ रुपये

वर्ष ११ : अंक ४

भाद्रपद : सम्बत् २०३५

हमारा सबसे बड़ा पर्व

श्रावणी का पर्व-आत्मा के शृंगार का दिन है। और सभी त्योहारों में हम सजाते हैं घर-द्वार-शरीर, किन्तु इस दिन हम अपने को, आत्मा को सजाते हैं। इसलिए यह पर्व आर्य परम्परा का सबसे महान् दिवस है।

ज्ञान के दीप से, आत्मा को ज्योतिर्मय करने का संकल्प हम धारण करें। स्वाध्याय के व्रत से मानस का कलुष मिटाने का निश्चय करें।

यज्ञ-तप-स्वाध्याय और व्रत आत्मा के उत्कर्ष हेतु सबल साधन हैं। इन के द्वारा आत्मा और परमात्मा के मध्य का परदा हटता है और साधना से प्रभु का साक्षात्कार होता है।

क्या आप प्रभु से मिलना चाहते हैं? क्या आप अपने को जानना चाहते हैं? क्या अपने जीवन को स्वर्ग बना, सुख-सन्तोष-आनन्द सुधा का पान करने के लिए आपका मन मचल रहा है।

यह प्रश्न हैं जिनका चिन्तन श्रावणी १८ अगस्त के दिन आप करें—और सोचें कि जीवन में कष्ट दुःख क्यों है? क्यों चिन्ता की चिता में जलना उड़ रहा है हमें? क्या जो हम कर रहे हैं उसी के लिए यह मानुष का जन्म हमें मिला था?

अमृत हम पर बरसे, हम देव बनें, प्रभु की ममता पाकर सुख-धन-सागर में स्नान करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हो।

प्यार-शृंगार-आनन्द और शक्ति के द्वारा हम वह सब कुछ पाने का प्रयत्न करें जो हम पाना चाहते हैं—

विश्वास कीजिए सब कुछ मिलेगा, आप को, ऊपर उठेंगे आप... .. महान् बनेंगे आप... .. बस केवल श्रावणी का पर्व संकल्प भावना के साथ मनाकर प्रभु की—वेद की राह पर चलने का निश्चय कर डालिए

—सुमेधा

श्रावणी : रक्षा बंधन पर

धरती पर वैदिक विचारधारा
का साम्राज्य स्थापित करने के लिए

अधिक से अधिक दान दीजिए

वेद मंदिर निर्माण के लिए

१०० ईंटों का व्यय

केवल २५) तो

व्रत रखकर भी भेजिए

जगदीश्वरानन्द सरस्वती
आचार्य

भारतेन्द्र नाथ
प्रबन्धक

दयानन्द-संस्थान

वेद मन्दिर, शहीद लेखराम नगर, दिल्ली-३६

मैं हृदय बन्दिर से पालिश रहा हूँ

कितने पाकिस्तान बनाओगे ?

कितने नागालैंड बसाओगे ?

भारत माँ को कब तक रुलाओगे ?

उत्तर दो !

१५ अगस्त भारत के इतिहास का सबसे मनहूस दिन, कलंक का काला अध्याय, माँ के टुकड़े करने के पाप का स्मरण, और स्व० वं० नेहरू के शब्दों में सिर कटा कर सिर दर्द की दवा करने का प्रयत्न ।

सिर भी कट गया और दवा भी न हुई...

आज भी वही नारे हैं, मांगें हैं जो पाकिस्तान के लिए उठी थीं । आज भी दंगे हो रहे हैं । आज भी सांप्रदायिकता जिन्दा है, आज भी जातीयता सिर उठाती है ।

हमारा आजादी हमें कुछ सिखा न पायी... आर्य देश में आसुरी तत्वों का विषधर सिर उठाता था, आज भी उठा रहा है, कोई उसका सिर कुचलने वाला पंदा न हुआ । वीरता नपुंसक हो गयी । धर्म-प्रेम सो गया ।

—गो जिसे करोड़ों माता कहते हैं आज भी कटती हैं ।

—हजारों व्यक्ति प्रतिदिन ईसाई बन रहे हैं ।

—इस्लाम की तबलीग आज भी जोरों पर है ।

फिर क्या हुआ माँ के टुकड़े करा-कर ? देश में धर्म की गंगा का अमृत रस आज सूख चुका है । हिमालय की घाटियों में वाइबिल का जहर घोलने वाले तो बहुत हैं पर वेद की ऋचाएं गाने वाले कंठ शायद मर चुके हैं ।

मेरे देश की धर्म प्राण जनता का धर्म आज स्वार्थ बन गया है । कोई ईसाई बने या मुसलमान उन्हें क्या ? लाखों गरीब भूखे पेट सोते हैं पर उनका दर्द किसीको कचोटता नहीं । चोरी, डाके, गुण्डागर्दी, रिश्वत, भ्रष्टाचार और कुनवापरस्ती, आज का ईमान है । पिछड़े वर्ग को उठाने की बात कांग्रेसों पर है । ग्रामों को भारत का अंग मानने का अवसर केवल चुनावों में आता है ।

नेताओं को गहियों से प्यार है ।

कांग्रेस हो या जनता, सब को गद्दी की भूख ने भटकाया है। सेवा की सुधार की, कुछ करने की भावना किसी में भी तो नहीं है।

जब तक चाणक्य सा प्रधानमन्त्री नहीं मिलेगा, जब तक ग्रामों को भारत का मूल नहीं माना जाएगा, जब तक राम कृष्ण की परंपरा जागृत नहीं होगी तब तक भारत का स्वराज्य अधूरा है।

एक मास में देश से गरीबी मिटायी जा सकती है। ३ मास में देश की समस्त समस्याएं हल हो सकती हैं। शर्त यह कि नेता ईमानदार हों। भारतीय हों, भारतीयता के पुजारी हों।

क्या कभी किसी ने सोचा है कि ईसाई-मुसलमान बनने पर भारत भक्ति समाप्त हो जाती है...क्या कभी कोई मंत्री चुपचाप रेल के छोटे दर्जे में चला है? रात को सड़कों पर घूमकर जनता को समझने का मनोबल किसी में है क्या?

जब तक भारत के कर्णधार स्वयं त्याग नहीं करते, त्याग का पाठ जनता को नहीं पढ़ा सकते और बिना त्याग भावना के भारत भारत नहीं रह सकता।

स्वार्थी नेता, स्वार्थी जनता, पथभ्रष्ट कर्मचारी और हमारी दुर्बलता से लाभ उठाने वाली विदेशी शक्तियां प्रयत्न कर रही हैं भारत को नष्ट करने का।

क्या भारत मां के ५० कोटि पुत्रों में १०-२० पुत्र भी सपूत बनकर मां की रक्षा के लिए प्राण नहीं दे सकते? भगर्तसिंह, बिस्मिल, आजाद, सुभाष का देश ३० वर्षों में क्या वीर शून्य हो

चुका है?

हम सब कुछ बदलना चाहते हैं। स्वराज्य का सुफल लाने के लिए हम उस क्रांति की बाट देख रहे हैं जो इस देश को सचमुच भारत बना सके।

क्या कोई इस महान् यज्ञ में हमारा साथ देगा? क्या भारत की रक्षा के लिए आप कुछ नहीं कर सकते...सोचिए और १५ अगस्त मनाइए।

वेद-प्रचार-सप्ताह धूम से मनाएं

सभी से प्रार्थना है कि १८ से २५ अगस्त तक वेद प्रचार सप्ताह धूमधाम से मनाएं। इस सप्ताह में निम्न विषयों पर भाषण कराएं।

१ वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

२ वेद की शिक्षा मानवमात्र के लिए है।

३ 'वेद' द्वारा निर्दिष्ट समाज व्यवस्था

४ वैदिक ईश्वर का स्वरूप

५ वैदिक धर्म ही क्यों सर्वश्रेष्ठ है?

६ वैदिक आश्रम व वर्ण व्यवस्था का महत्व

७ विश्व शांति और वेद

८ भगवान श्री कृष्ण का जीवन चरित्र जन्माष्टमी के दिन सब को बताएं
प्रत्येक परिवार में वेद पहुंचाए

इस सप्ताह में आप का प्रथम कर्तव्य होना चाहिये घर-घर में वेद पहुंचाना। कोई आर्य परिवार भी ऐसा न रहना चाहिये जिसके घर में वेद न हो। आर्य सदस्यों के अतिरिक्त भी अन्य परिवारों में वेद पहुंचाने में हमें सक्रिय होना चाहिए।

वेद प्रचार सप्ताह में निम्न साहित्य भारी संख्या में बाँटिए ।

वैदिक साहित्य बाँटिए

- १ वेद ज्योति
- २ वेदामृत
- ३ विश्व को वेद का संदेश
- ४ अथर्ववेद परिचय
- ५ वेद और बाइबिल
- ६ क्या वेद में मांस भक्षण का विधान है ।
- ७ वेदान्तजलि
- ८ सामवेद भाष्य
- ९ वेदों का यथार्थ स्वरूप
- १० कायाकल्प
- ११ मुझे आर्यसमाज क्यों प्रिय है ।
- १२ आर्यसमाज के सौ वर्ष

निराशा मृत्यु है :

निराशा मृत्यु का पूर्व रूप है । इस का आगमन सर्वनाश का निमन्त्रण है, इसलिए एक क्षण के लिए भी निराशा को पास न फटकने दो ।

आशा का स्वागत करो । कर्मठ बनो, कर्म करो, कर्म विजय देगा । विजय निश्चित है । त्याग तप कर्म और आशा मिलकर जो चाहें वह कर सकती हैं ।

इसलिए हारने पर भी निराश होना छोड़ दो । अपितु और भी अधिक उत्साह से कर्म में लगे । बार-बार प्रयत्न करो, सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी ।

कार्य यदि शुभ है, उद्देश्य यदि पवित्र है, कर्म यदि निरन्तर है तो फिर कौन असफलता देगा । भाग्य ! यह तो एक छलना है । भाग्य हमारे पीछे दौड़ता है । हम स्वयं उस के निर्माता हैं । आप

उससे भीत क्यों हो ?

कायर नहीं बौर बनकर धरती पर राज्य करो । सुख-साधन तुम्हारे चरणों पर न्योछावर होंगे । तुम सफल होंगे । बस आशा को साथ ले लो, निराशा शब्द को मस्तिष्क से निकाल दो फिर जिधर चाहो चल पड़ो, कल भी तुम्हारा होगा, और आज भी ।

सब तुम्हारे सौभाग्य को देख कर मुदित होंगे । अतिः सफलता पाकर भी नम्र रहना, कर्म करते जाना, बढ़ते जाना स्वर्ग तुम्हारा होगा ।

हम-तुम-वे एक हैं ।

परमात्मा सर्वत्र है । वह हम में भी है और तुम में भी । हम-तुम-वे और सब परमात्मा के व्यापक होने से एक हैं ।

किन्तु हमारे पास परमात्मा है । पर हम परमात्मा नहीं हैं । हमारी सब की पृथक् सत्ता है ।

अतः सब पृथक्-पृथक् हैं ।

यह अनेकता एकता में बदले इसके लिए आवश्यकता है परमात्मा का सामीप्य उसका दर्शन, । वह सर्वत्र है, पर हम उसे ग्रहण नहीं करते, इसी से हम अलग-अलग हैं । किन्तु जो अपने में परमात्मा का साक्षात्कार करने की स्थिति में हो जाते हैं वे सब परमात्मा के कारण एकता की डोर में बंध जाते हैं ।

पृथक् होते हुए भी परमात्मा का सामीप्य हमें एक बना देता है । हमारा लक्ष्य अनुभूति, चिन्तन एक हो जाते हैं और इस सिन्धु के पाने से हम अमरत्व के पथिक बन अपने को एक ही पथ का पथिक मान लेते हैं ।

तब प्यार उमड़ता है, स्नेह उभरता है, द्वेष, ईर्ष्या का लेश भी मिट जाता है वस्तुतः परमात्मा ही वह शक्ति है जो मनुष्य को भेद भावों से पृथक् कर सकती है।

मन की कोमल घाटियों में जब प्यार का सितार बजता है, जब मादक गीतों के स्वर अमृत का निर्झर ले कर उपस्थित होते हैं, जब प्रिय से मिलन की स्मृति अपूर्व आनन्द की धारा वन समस्त कलुष और काल की अंधेरी नींव को दूर पार भेज देती है तब प्रियतम विहाम की प्रथम किरण सा ऊषा की रंगीन रश्मियों के साथ मुझे मेरे अस्तित्व को जागृत कर जो उदात्त भावनाएं देता है उनको लिखने में मैं अपने को असमर्थ पा रहा हूं।

जानता हूं केवल यह कि मेरा प्रभु जब मुझ में ज्ञान जागृत कर अपने स्वरूप का दर्शन कराता है तब मैं प्यार का सरोवर बन जाता हूं और तब मैं सबको अपना अनुभव करने लग जाता हूं।

एकता के मन्त्र का प्रथम साक्षात्कार मुझे तभी होता है जब मैं अपने प्रिय परमात्मा को देख लेता हूं, तभी मैं अपने को जानता हूं, तभी धरती का सत्य मेरे सम्मुख साकार होता है।

अन्यथा उसे भूल कर धरती पर रहना तो ऐसा ही है जैसे नेत्रहीन हो कर सड़क पर चलना।

प्रभु मेरी ज्योति है, वह मेरी दृष्टि है। वही मुझे सत्य के समीप ला सकता है। वह मेरा प्रियतम कितना प्यारा है। कितना महान्, कितना मीठा.....

काश, कि हम अनुभव कर पाते...?
यदि वेद भाष्य छपाने का प्रवन्ध हो जाए—तो

प्रतिवर्ष एक लाख परिवारों में वेद भाष्य पहुंचाना कठिन नहीं है। हमारा दुर्भाग्य है कि जनता में भारी मांग होने पर भी हम उसकी पूर्ति नहीं कर पाते।

एक बार वेद भाष्य छपाने के लिए २ लाख २० का तो कागज ही चाहिए। छपायी-जिल्द आदि के लिए भी भारी राशि की आवश्यकता पड़ती है। संस्थान के पास पूंजी का सर्वथा अभाव है। अतः उसे उधार लेकर सारी व्यवस्था करनी पड़ती है।

उधार जहाँ मंहगा पड़ता है वहाँ देर भी होती है। अच्छे स्तर का काम भी नहीं हो पाता। अतः यदि ५ हजार वेद भाष्य छपाने का प्रवन्ध जनता कर दे, तो फिर गाड़ी तेजी से दौड़ सकती है।

हम वेद-प्रचार की बात तो करते हैं पर क्या घर-घर में वेद पहुंचाने के लिए यथा शक्ति सहयोग नहीं दे सकते। अपना कर्त्तव्य सोचिए और वेद भाष्य छपाने में सहयोग दीजिए।

१००१ देने वालों का चित्र वेद भाष्य में सादर प्रकाशित किया जाएगा।



डा० सूर्यदेव शर्मा स्मारक निधि

से ५०० सत्यार्थ-प्रकाश आधे मूल्य में

एक व्यक्ति को १० से अधिक नहीं

शीघ्र संग्राह्य

जन-ज्ञान-प्रकाशन नई दिल्ली-५

आवश्यकता है : एक राजनैतिक दल की

जो पूर्णतया भारतीय हो, जिस का चिन्तन भारत के हित में हो। भारत की भाषा में भारत के लिए जो सोच सके।

भारत की गरीब जनता का प्रतिनिधि बनकर जो जन-जान को स्वतन्त्रता का सुख अनुभव करा सके। जिसके हाथ में सत्ता सेवा के लिए हो। मन्त्री बनकर भी कुटिया में रहना जिसका आदर्श हो।

पाकिस्तान और बंगला देश को भारत का अभिन्न अंग बनाकर, संप्रदायवाद का मूल जड़ से मिटाकर, जातीयता का विषधर फन कुचल कर जो मां भारत की आरती उतार सके।

उद्योग धन्धों को उत्पादन की पूर्ण स्वतन्त्रता, व्यापार में सरकारी हस्तक्षेप की समाप्ति, हड़तालों पर पाबन्दी और शोषण को अपराध मानकर जो सर्वांगीण विकास का द्वार खोल सके।

हर ग्राम में सड़कें-विजली-स्कूल और हस्पताल की व्यवस्था जो कर सके। चोरी-डकैती को जड़ से उखाड़ सके।

शराब-तस्करी-गोवध और नशे सभी बन्द किए जाएं। विलासिता-प्रचार रोका जाए और चरित्र-निर्माण शिक्षा का लक्ष्य हो।

नारे नहीं काम, योजनाएं नहीं व्यवहार और कागजी कार्यवाही नहीं, प्रत्येक आदेश पर तुरन्त अमल कर देश को सर्व शक्ति सम्पन्न बनाया जाए,

कांग्रेस-जनता और सभी वर्तमान दल भारत का हित नहीं कर सकते। स्व-राज्य संरक्षण के लिए आज जो चाहिए उसकी पूर्ति नया राजनैतिक दल करे।

राजनीति धर्म से अनुप्राणित हो और धर्म शाश्वत् सत्य का प्रतिबिम्ब माना जाए।

देश को बचाने के लिए ऐसे राजनैतिक दल की आवश्यकता हम अनुभव कर रहे हैं। क्या आपका मन भी ऐसा सोचता है? देखिए—आप क्या चाहते हैं। हमें बताएं तो सही कि हमारा चिन्तन कहीं भटक तो नहीं गया?

१५ अगस्त पर हम भारत को स्वतन्त्र-अखण्ड-सर्वशक्ति सम्पन्न स्वरूप देने का संकल्प लेते हैं

—भारतेन्द्र नाथ

रक्षा बंधन पर देश-धर्म और सत्य की

रक्षा के लिए दयानन्द संस्थान को

अधिक से अधिक सहयोग दें।

दोहरी शिक्षा नीति और आर्यसमाज

इतिहास की किताब में मुख्यतः दोसवीं सदी का उत्तरार्ध दुनियाँ भर में परिवर्तनकारी सोच के विकसित होकर आन्दोलनों के रूप में फूट पड़ने के काल की तरह लिखा जाएगा। भले ही वे आन्दोलन, राजनैतिक और कहीं-कहीं आर्थिक जड़ता के खिलाफ ही उठ पाये हों, हाल के ही घटनाक्रम में हमारे देश में आन्दोलन और दमन के परिणाम-स्वरूप जो सत्ता परिवर्तन हुआ था, सामाजिक बदलाव की दिशा में असफल रहा।

आन्दोलन के इस युग में जहाँ विरोध विद्रोह की मंजिल तक पहुँच रहा हो, कोई भी सुधारवादी संस्था अपनी पारंपरिक कार्यप्रणाली द्वारा कुछ बदल सकना तो दूर जीवित तक नहीं रह सकता, फिर आर्यसमाज जिसका जन्म ही यथास्थिति के खिलाफ क्रांतिकारी स्वरूप में हुआ हो, वह आखिर कब तक अतीत को भुना-भुना कर अपनी 'बाजारू क्रेडिट' कायम रख सकेगा? पिछले २५-३० वर्षों के आर्य समाज के इतिहास को गौर से देखें, हालाँकि यह पतन का

इतिहास है, फिर भी इसने तीन अच्छे आन्दोलन उठाए। हैदराबाद सत्याग्रह, हिन्दी आन्दोलन और गौरक्षा आन्दोलन, इनमें आर्यसमाज की छवि का पैना और ईमानदार लगना साधारण आर्यजनों की संघर्षशीलता का ही परिचायक है, दुर्भाग्य से पिछले दस सालों में व्यापक मसलों को आकार देकर आर्यसमाज ने अज्ञान, अभाव या अन्याय में से किसी के भी खिलाफ कोई योजनाबद्ध संघर्ष नहीं किया नतीजा हमारे सामने है। इस दरमियान जिस तेजी से अंदरूनी झगड़ों का विकास हुआ, छोटे-बड़े सभी स्तरों पर हाथापाई और मुकदमेवाजियाँ बढ़ीं, जो अपने आप में शर्मनाक बात है। खाली दिमाग शैतान का घर ही होगा। निष्क्रियता की हालत में आपसी झगड़ों की कृत्रिम सक्रियता शुरू हो जाना स्वाभाविक ही था। अब इन झगड़ों पर नियंत्रण तथा युगधारा में अपने अस्तित्व को बचाकर प्रासंगिकता बनाने की दो बड़ी चुनौतियाँ विचारवान आर्यसमाजियों के सामने हैं। अभी 'सम्पूर्ण क्रांति' की बात चल रही है। पिछले वर्ष भर में सत्ता से सामाजिक

वातावरण बना रखा है कि इनमें प्रवेश पाना भी आमतौर से मुश्किल होता है। वैसे अतिरिक्त पैसे वालों के लिये तो फिर भी द्वार खुले रहते हैं। कहीं-कहीं माता-पिता के स्वर (स्टैंडर्ड) को भी द्वितीय वरीयता दी जाती है। शासकीय तौर पर पब्लिक स्कूलों के २५ फीसदी छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाती है, किन्तु यह तो निर्धन छात्रों के साथ और भी मजाक हुआ।

इनकी अन्दरूनी हालत पर विचार करें। जो लोग ये समझते हैं कि इन स्कूलों में बालकों का मानसिक व बौद्धिक विकास अधिक मनोवैज्ञानिक पद्धति से किया जाता है, वे बड़ी गलतफहमी में हैं। दूसरे स्कूलों की तरह इनमें भी वही ड्रिलिंग, रटन्त, अनुकरण, अंधसहमति, आज्ञाकारिता आदि पर आधारित शिक्षा पद्धति है। एटीकेट्स (शिष्टाचार) के नाम पर कुछ अंग्रेजी वाक्यों, कविताओं व सामान्य ज्ञान के नाम पर अधिकाधिक बातों की रटाई, ये ही सब इन स्कूलों की विशेषताएं हैं। कक्षाओं में बालकों की मौलिक प्रतिभा के विकास के लिए वातावरण की मुक्तता तो शायद ही कभी मिलती हो। स्वयं स्फूर्तता, सृजनशीलता व जिज्ञासा की अभिव्यक्ति के अवसर न मिलने का नतीजा यह है कि छात्र विचारक, अन्वेषक या खोजकर्ता बनने की बजाय तथ्यों, आँकड़ों व वाक्यांशों का टेपरिकार्ड भर बन जाता है। इसके प्रमाण में यदि पब्लिक स्कूलों से निकलने वाले छात्रों का सर्वेक्षण किया जाय तो उनमें से कवि, संगीतकार, वैज्ञानिक, कलाकार विरला ही मिलेगा।

यह तर्क भी बेबुनियाद है कि इन स्कूलों से सर्वाधिक योग्य व प्रतिभा-सम्पन्न छात्र निकलते हैं। यह तो माना जा सकता है कि अतिरिक्त सुविधाओं व सजगता के कारण इनका औसत शैक्षणिक स्तर ऊंचा रहता है, किन्तु हायर संकेण्ट्री, इन्टर आदि की मेरिट लिस्टों में इनमें से कितने आ पाते हैं ?

इस सबके बावजूद पब्लिक स्कूलों की चकाचौंध ने अपनी एक विशेष प्रकार की 'स्टीरियोटाइप' उप संस्कृति को विकसित किया है। अपनी बाहरी सज-धज और विलायती चमक दमक के कारण एक सुनियोजित तरीके से इनमें हजारों किशोर मनों से भारतीय संस्कृति की हत्या करके उन्हें अंग्रेजिवत का शिकार बनाया जाता है। जिस उम्र में भारतीय किशोर में राम, कृष्ण, दयानन्द और गाँधी के आदर्श विकसित होना चाहिए, उस समय वह रौब-रुतवे के पाश्चात्य संस्कार सीखता है। भारतीय संस्कृति के हत्या के इनसे बड़े सामूहिक स्थल दूसरे नहीं। जो लड़के-लड़कियाँ इनमें निकलते हैं वे निश्चित तौर पर व्यवस्था नियंत्रक तंत्र के कल पुर्जे बनते हैं। चाहे मामला सरकार का हो अथवा सामाजिक आर्थिक नियंत्रण का, प्रभावी यही बन रहता है। ये लोग न केवल भारतीय संस्कृति को हेय दृष्टि से देखते हैं, बल्कि भारतीय जीवन मूल्यों को तहस-नहस करने में भी अपनी शान समझते हैं। परिणामतः विलायती भाषा, वेशभूषा और सभ्यता का प्रभाव लगातार बढ़ ही रहा है। हमारी संस्कृति की हत्या के मूल में सब से बड़ा हाथ दोहरी शिक्षा नीति का

ही है।

दूर क्यों जाया जाय। रोजमर्रा में ही देखा जा सकता है कि जो बच्चे इन स्कूलों में पढ़ते हैं, वे अपने आसपास के साधारण बच्चों के साथ खेलने या बातचीत करने में तौहीन समझते हैं, यहाँ तक कि निम्नवर्गीय जिन्दगी उन्हें उपहास और घृणा का विषय होती है। दुर्भाग्य तो यह है कि यह रोग 'आधुनिक' भव्यम वर्ग में भी तेजी से फैल रहा है। इसके दो ही कारण हैं, एक तो दिमागी गुलामी दूसरे अपनी संतानों को 'बड़ा' बनाने की लालसा। दिमागी गुलामी का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है कि अंग्रेजियत और अंग्रेजी अभी तक हमारे बड़प्पन, इज्जत वगैरह का मानदण्ड बनी हुई है। अपने बच्चे के मुँह से वही अंग्रेजी के घिसे पिटे वाक्य 'व्हाट इज योर नेम' (तुम्हारा नाम क्या है) 'माय नेम इज डब्लू' (मेरा नाम डब्लू या इसी तरह का कोई और है) सुनकर कितने गौरवान्वित होते हैं! मुझे भी अक्सर इस तरह की नुमायशें देखने का दुर्भाग्य मिला है। आज अपनी संतानों में अंग्रेजियत भरने की जो होड़ आधुनिकतावादियों में और प्रगतिशीलों (?) में है, वह बहुत बेबुनियाद तथा हानिकारक है इसी मानसिकता को आकार व जीवन देने का काम ये स्कूल करते हैं।

दोहरी शिक्षा नीति का एक और भयकर प्रभाव यह होता है कि जब बड़े अधिकारी व अन्य सम्पन्न और प्रभावशाली व्यक्तियों के बच्चे पब्लिक स्कूलों में पढ़ते हुए अपने उज्ज्वल भविष्य का आरक्षण पा चुकते हैं, तब उन्हें क्या

पड़ी है कि वे साधारण स्कूलों की तरफ ध्यान भी दें। दूसरे वे, स्वयं ही इसी तरह के स्कूलों से निकले हुए होते हैं। वे क्या जाने कि बड़ई या मोची का लड़का गांव में किस तरह पढ़ता है? किस तरह देश के लाखों नीनिहालों को संस्कारित करने के बजाय स्कूली मास्टर उनका मन मस्तिष्क बिगाड़ कर रख देते हैं? उनका पाठ्यक्रम कैसा है अथवा उनकी दूसरी क्या जरूरतें हैं? अगर कागजी तौर पर वे जानते भी हैं तो संवेदनात्मक जुड़ाव न होने से उन्हें नजरंदाज कर देते हैं।

मैं बिल्कुल साफ तौर पर कह सकता हूँ कि साधारण स्कूलों के बच्चों की परवाह तभी की जा सकती है जब मिनिस्टर, कलेक्टर, चपरासी, मजदूर सभी के बच्चे एक साथ बैठकर पढ़ते हों। जब कोई चपरासी का लड़का कलेक्टर के लड़के की नाक पोंछ दे और वह उसी हालत में अपने 'डैडी' के पास पहुँच कर शिकायत करे, इतना ही नहीं जब किसी कमिश्नर के 'छोटे बाबू' शाम को अपनी मम्मी से, स्कूल में मोची के लड़के द्वारा सुने किसी अश्लील शब्द के माने पूछने की जिद करेगा, तब कहीं हमारे देश के कथित बड़े लोगों की दिमागी जड़ता पर सही चोट होगी। तभी वे अपने देश के साधारण आदमी की सभ्यता, संस्कारों और जरूरतों की सही जानकारी पा सकेंगे। साथ बैठकर समान ढंग की स्कूली शिक्षा लेकर निकला हुआ युवक ही समता का वास्तविक प्रयास कर सकेगा। समानता की मानसिक तैयारी के बगैर किसी भी तरह की समानता की बात

क्रांति की कल्पना करने वालों का जो मोह भंग हुआ है, उससे तय है कि सम्पूर्ण क्रांति के लिए सरकारी तंत्र से अलग एक समानान्तर सांस्कृतिक क्रांति की जरूरत है। आर्यसमाज यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

आर्यसमाज में जो लोग 'सम्पूर्ण क्रांति के' प्रति आस्थावान नहीं हैं, उन्हें भी इतना तो समझ ही लेना चाहिये कि युग की चुनौती को स्वीकारते हुए आर्य-समाज की जमीन से कोई आन्दोलन अवश्य उठाना पड़ेगा, भले वह सम्पूर्ण क्रांति के नारे के नीचे न सही। फिर उपदेश, भाषण और सुविधा वाले वर्तमान आर्यसमाजी चरित्र पर भी चोट करना आवश्यक है। किसी आन्दोलन की सफलता तो अपने आप में उपलब्धि होती ही है, किन्तु एक ही आन्दोलन जितना संगठनात्मक लाभ दे जाता है, वह वर्षों की बैठक-भाषण प्रस्ताव बाजियों से संभव नहीं। संगठन की जीवनी शक्ति उसके सदस्यों की संख्या पर नहीं, कार्यकर्त्ताओं की गुणात्मकता पर निर्भर होती है, और आन्दोलन की तपन ही सही नेतृत्व की पहिचान तथा कार्यकर्त्ताओं में निखार लाती है। किसी आन्दोलन को उठने तथा तेजी से फैलने के लिये उसकी सतह पर कोई भावनात्मक मुद्दा अनिवार्य होता है, जबकि उसे भजवृत्ति से चलाये रखने के लिए गम्भीर वैचारिक पृष्ठभूमि होनी चाहिए। इन्हीं सब बातों को मद्देनजर रखकर किसी आन्दोलन की प्रासंगिकता पर विचार किया जाये। यहाँ मैं ऐसे ही एक मुद्दे पर चर्चा करूँगा, जिस पर विचार और वहस की जा सकती है।

शिक्षा बालक की अंतर्निहित क्षमताओं तथा सार्वजनीन संस्कृति के विकास और परिमार्जन का सबसे बड़ा जरिया है। किन्तु हमारे देश की शिक्षा पद्धति बाबूगीरी और नौकरशाही पैदा करने वाली तो हैं ही, साथ ही गैर बराबरी मूलक सामाजिक ढाँचे के अनुरूप ही उसे सम्बल देने वाली दोहरी नीति है। असमानता का मन बनाने वाली इससे बड़ी और बुनियादी साजिश दूसरी नहीं। एक तरफ अमीरजादों के लिए मंहगे विशिष्ट स्कूल हैं, दूसरी तरफ सस्ते सरकारी स्कूल। पहली तरफ रॉयल, केम्ब्रिज, पब्लिक (नामधारी) अंग्रेजी स्कूल हैं, जिनके एक विद्यार्थी पर कम से कम तीन-चार हजार रुपया सालाना खर्च किया जाता है, दूसरी तरफ सरकारी स्कूल के बच्चे पर मुश्किल से तीस-चालीस रुपया सालाना खर्च होता है। खर्च की इस सौगुनी गैर बराबरी का नतीजा साफ है। विशाल भवन वाले अंग्रेजी स्कूल का छात्र सुबह धूमने और रात को सोने की पोशाक के अतिरिक्त तीन बार कपड़े बदलता है। दो बार नाश्ते के अलावा डायनिंग टेबिल पर चमचमाते छुरी कांटों से तीन बार खाना खाता है। टेनिस और क्रिकेट खेलता है। 'गेट आउट' और 'शटअप' की भाषा में रौब-रुतवे की जिन्दगी जीना सीखता है। तमीज के नाम पर फर्फटे से अंग्रेजी बोलने का अभ्यास करता है। दूसरी तरफ काँजी हाउस नुमा सरकारी स्कूलों में बरसात में पानी टपकता है, सर्दियों में सोलन भरी रहती है और गर्मियों में हवा तक नहीं पहुँच पाती। इनमें टाट-

फट्टियों अथवा उनके भी अभाव में पढ़ाई के नाम पर तीन-चार घण्टे रोज घेर कर बैठे जाने वाले बच्चे हैं, जिन्हें संतुलित आहार या ढंग के कपड़े कभी नसीब नहीं हुए। ये काँच की गोलियाँ खेलना व पतंगें काटना सीखते हैं। आपस में अक्सर चोरी करना, झगड़ना और अर्थ न समझने वाली भद्दी गालियाँ बकना सीखते हैं।

शिक्षा की इस दोहरी तस्वीर से दो अलग किस्मों के भविष्यों की दिशा साफ हो जाती। जाहिर है महंगे स्कूलों में पढ़ने वाले पुराने राजघरानों, ऊँचे अफसरों और पूंजीपतियों के लड़के प्रशासन व अर्थव्यवस्था चलाने वाले वर्ग के ही अंग व ऊँचे सैनिक अफसर ही बनते हैं। जबकि साधारण स्कूल में पढ़ने वाले अध्यापक, क्लर्क, छोटे दुकानदार, किसान आदि के बच्चे की नियति भी इसी तरह होती है। इनमें इन्जीनियर, डाक्टर तक मुश्किल से बनते हैं। कितना दुर्भाग्य है कि उच्चवर्ग के चंद परिवार ही इस देश की लगभग सारी प्रशासनिक व सैनिक सेवाओं तथा सत्ता व संपत्ति को नियंत्रित करने वाले ऊँचे ओहदों का आरक्षण जैसा कराए बैठे हैं। वे स्व-भावतः यह चाहते ही हैं कि उनकी पीढ़ियों के भविष्य की गारंटी भी बरकरार रहे। इसीलिए यह वर्ग सैद्धान्तिक रूप से भले कुछ भी चिल्लाए, किन्तु दोहरी शिक्षानीति की भयंकर साजिश का चलाए रखने का हर संभव प्रयत्न करता है। यही सब कुछ हो रहा है। प्रतियोगी परीक्षाओं में भी मौखिक साक्षात्कार का ढाँचा कुछ इस तरह बना

रखा है कि आभिजात्य और स्तवाशाही के तौर-तरीकों से वेवाकिफ निम्नमध्य वर्गीय नवयुवक शायद ही निकल पाता है। अपवादों को छोड़कर वे ही अंग्रेजी दाँ ब्राजी मार ले जाते हैं और उनकी बगौती सुरक्षित रहती है। आखिर चयन-कर्ता भी तो प्रशासकीय अफसर जाति के लोग होते हैं। इस सारे दुष्चक्र में राष्ट्रीय प्रतिभा का कितना हनन होता है, अन्दाजा लगाना कठिन है।

पब्लिक स्कूल कहलाने वाले इन अतिविशिष्ट वर्गीय स्कूलों के बारे में और भी जान लेना बेहतर होगा। १८७१ में इंग्लैंड में उच्चतम वर्गीय बच्चों को विशिष्ट प्रकार की शिक्षा देने के उद्देश्य से 'हैडमास्टरर्स कान्फ्रेंस' की स्थापना की गई, जिससे सम्बद्ध इस प्रकार के स्कूल शुरू हुए। हमारे देश में इस तरह के स्कूलों की शुरुआत राजा महाराजाओं के बच्चों के स्कूलों के रूप में हुई। तब इनका नाम 'चीफ्स कालेज' तथा 'राजकुमार कालेज' था। पहिला राज-कुमार कालेज राजकोट में, फिर अन्य राजघरानों ने बनवाये। इन्हीं का विकास होकर यहाँ भी १९४० में 'हैडमास्टर कान्फ्रेंस' की स्थापना हुई, जिससे शुद्ध रूप से संबद्ध ४० स्कूल अभी हमारे देश में हैं। इसके अतिरिक्त अनेकों सैनिक स्कूल तथा वैसे ही तौर तरीकों वाले रॉयल, केम्ब्रिज, कॉप्पेन्ट मिशन आदि अंग्रेजी माध्यम से चलने वाले स्कूल हैं। विदेशी सहायता से चलने वाले कॉप्पेन्ट स्कूल जो बड़ी तेजी से बढ़ रहे हैं, उनका तो उद्देश्य ही ईसाइयत फैलाना है।

इन सारे स्कूलों ने कुछ इस तरह का

एकदम वेईमानी है, यह तय है। अतः शैक्षणिक समता के इस बुनियादी सवाल पर आन्दोलन उठना जरूरी है। आर्य समाज इस दिशा में पहल कर सकता है, क्योंकि यह समय की मांग तो है ही, साथ ही महर्षि दयानन्द का आदेश भी है; दयानन्द जैसा क्रांति दृष्ट मनीषी मेरे विचार में दूसरा नहीं आता। एक शताब्दी पहिले ही इस युग दृष्टा ने शिक्षा में बराबरी की आवश्यकता अनुभव करते हुए सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिख दिया—“सबको तुल्य वस्त्र, खान, रान, आसन दिये जाएं, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हों चाहे दरिद्र को संतान हो। सभी को तपस्वी होना चाहिए।”

इतना ही नहीं पारिवारिक स्थिति के कारण बालक के मस्तिष्क पर असमानता की परछाईं तक न छू सके, इसके लिए उन्होंने अनिवार्य छात्रावास की कड़ी व्यवस्था दी—“इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष के आगे कोई कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सके, पाठशाला में अवश्य भेज दे, जो न भेजे वह दण्डनीय हो,” तथा उनके माता-पिता, अपनी संतानों व संतानें अपने माता पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र व्यवहार एक-दूसरे से कर सकें।”

अब महर्षि के अनुयायियों से बड़ा दोषी और कौन हो सकता है कि उनके द्वारा सुझाए गए इन गम्भीर मामलों पर हमारा ध्यान ही नहीं जाता : जब कि आपस में एक-दूसरे को नीचा दिखाने

में खूब हाथ-पैर चलते हैं।

जो संगठन युग की मांग के अनुरूप अपनी कार्य-प्रणाली में परिवर्तन नहीं कर सकता, उसकी मौत को भी कोई नहीं बचा सकता : मैं दोहरा दूँ, व्यापक पैमाने पर आर्यसमाज अपनी सैद्धान्तिक प्रखरता अथवा व्यवहारिक जीवन्तता का कोई भी उदाहरण वर्तमान में नहीं दे पा रहा। दोहरी शिक्षा नीति की खिलाफत का मुद्दा सर्वथा सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक है।

जहां तक वाहरी समर्थन का सवाल है, यदि आर्य समाजी नेतृत्व क्रियाशील, प्रखर और ईमानदार हो तो तमाम ईमानदार समाजवादियों, राष्ट्रवादियों, संस्कृतिवादियों और समतावादियों के साथ आम जनता का व्यापक समर्थन भी जुटा सकता है। फिर कृत्रिम विषमता के खिलाफ आज जो अमूर्त चेतना जन्मित हो रही है, उसे सही प्रतिनिधित्व मिल सकेगा, साथ ही उसका नियोजन इस अहिंसक आन्दोलन में किया जा सकेगा। काश ! एक बार समस्त आर्यजन यज्ञाग्नि के सामने संकल्प लें और घोषणा कर दें कि हम समाज में दोहरी शिक्षा नीति को नहीं पनपने देंगे।

संकल्प के साथ ही उसे व्यवहार में लाने का सतत् प्रयत्न आरम्भ रखें। सभी के मन मस्तिष्क से ‘पश्चिमी सम्मता के अंधानुकरण’ के विरुद्ध एक ऐसी क्रांति की शुरुआत करें, जो वास्तव में अहिंसक क्रांति हो।

और हम अहिंसक आन्दोलन द्वारा युग की चुनौती को स्वीकारें।



—स्वामी जगदीश्वरानन्द जी

फिजी द्वीप जैसा मैंने देखा

दयानन्द-संस्थान के आचार्य बाल ब्रह्मचारी विद्वान् और निस्पृह संन्यासी स्वामी जगदीश्वरानन्द जी पर आज प्रत्येक भारतीय गर्व कर सकता है। वे अभी-२ जुलाई को वेद-प्रचार कर फिजी से लौटे हैं—स्वागत

—सम्पादक

फिजी आस्ट्रेलिया से लगभग २५०० किलोमीटर की दूरी पर है। फिजी द्वीप समूह में ३२० द्वीप हैं। इनमें बीती लेवू और वनवा लेवू ये दो द्वीप सबसे बड़े हैं। इनके अतिरिक्त तवयूनी लकम्बा आदि कुछ छोटे-छोटे द्वीप हैं। कुछ द्वीपों का क्षेत्रफल तो कुछ मीटर ही है। अधिकांश द्वीपों में कोई नहीं रहता। फिजी की राजधानी सूवा है। फिजी क्षेत्रफल लगभग ७,००० वर्गमील है और जनसंख्या है पांच लाख। भारतीयों की जनसंख्या ५१.० है। यहां के मूल निवासियों को कार्डीव्हीन्ती कहते हैं। इनकी जनसंख्या ४५.० है। शेष ४.० में गोरे, चीनी तथा अन्य लोग सम्मिलित हैं।

जनसंख्या का प्रमुख भाग बीती लेवू और वनवा लेवू में ही है। बीती लेवू के प्रमुख नगर हैं—सूवा, नसारी, राकी-

शकी, वा, लटोका, नेनदी, सिमाटो का नावुआ और तावुवा। वनवा लेवू के प्रमुख नगर हैं लम्बासा, वूआ और सावू-सावू।

जलवायु - फिजी द्वीप की जलवायु अत्युत्तम है। न बहुत गर्मी है और न बहुत सर्दी। यहां का अधिकतम तापमान ६०° फार्नहाइट है और न्यूनतम ६०°। वर्षा खूब होती है। सूवा में एक वर्ष में औसतन १२० इन्च वर्षा हो जाती है। अन्य स्थानों पर ७०-८० इन्च। ६ अगस्त १९१० में एक रात्रि में सूवा में ३० इन्च वृष्टि हुई जो सम्भवता एक त्रिश्व रिकार्ड। चारों ओर जिधर निकल जाएं हरियाली ही हरियाली है। तवयूनी में समुद्र के सामने बने हुए भव्य भवन सभी के मन को आकर्षित करते हैं।

भाषा - यहां की राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी है। भारतीय लोग अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी का भी व्यवहार करते

हैं। काईवीती लोगों ने भी अपनी एक भाषा बनाई हुई है। यह बहुत विकसित नहीं है परन्तु अपनी बोलचाल का काम चला लेते हैं। इस भाषा में D और G से पूर्व N, B से पूर्व M बोला जाता है। जैसे Nadi को नेनडी और Sigatoka को सिगाटोका, Labasa को लम्बासा बोला जाता है। C को D बोलते हैं। Moce को मोदे बोलते हैं। बुला का अर्थ है नमस्ते, बिना अर्थ है धन्यवाद, नीसा मोदे का अर्थ है—ईश्वर आपकी रक्षा करे।

विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा पढ़ाई जाती है। पहली कक्षा से छठी तक हिन्दी भी। अब हिन्दी भाषा अगली कक्षाओं में भी पढ़ाई जाएगी और हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल दृष्टिगोचर होता है।

यहां अंग्रेजी के दो प्रमुख दैनिक पत्र हैं—फिजी टाइम्स तथा सन। हिन्दी के दो साप्ताहिक पत्र निकलते हैं—शान्ति-दूत और फिजी समाचार।

धर्म और संस्कृति—यहाँ हिन्दू (आर्यसमाजी, सनातनी, सिख, कबीर पन्थी) मुस्लिम और ईसाई ये सभी मतगवल्म्वी हैं। यहाँ सभी को अपना-अपना धर्म प्रचार करने की छूट है परन्तु कोई किसी के धर्म पर आक्षेप नहीं कर सकता। प्रातःकाल रेडियो का कार्यक्रम पाँच मिनट के धार्मिक प्रवचन से आरम्भ होता है जिसमें जनसंख्या के अनुसार आर्यसमाजी, सनातनी, सिख, मुस्लिम वारी-वारी सभी बोलते हैं।

मेरा प्रचार क्षेत्र आर्यों एवं सनातनियों में रहा है। जहाँ आर्य मन्दिरों

में व्याख्यान हुए वहाँ अनेक मन्दिरों में भी प्रवचन हुए। धर्म के प्रति लोगों में श्रद्धा है। प्रवचनों में अच्छी उपस्थिति होती थी। प्रायः १५० से २००, २५० तक उपस्थिति हो जाती थी। लम्बासा में सबसे अधिक उपस्थिति होती थी—पाँचसी, छह सौ तक। सर्वप्रथम जिस दिन सभी मतगवल्म्वियों (हिन्दू, मुस्लिम, काईवीती और ईसाइयाँ) की ओर से स्वागत किया गया उस दिन की उपस्थिति लगभग १००० थी। फिजी की दृष्टि से यह बहुत बड़ी उपस्थिति है वहाँ की राजनीतिक सभाओं में भी इतनी उपस्थिति कठिनता से ही होती है।

वहाँ यज्ञ, संस्कार आदि उसी विधिविधान से होते हैं जिस प्रकार भारत में। मैंने १ वर्ष में ३३२ प्रवचन, यज्ञ और संस्कार कराये।

उत्सव और पर्व—रक्षा बन्धन, दीपावली, होली, रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, ईद और क्रिसमस आदि पर्व अत्यन्त उल्लास के साथ मनाए जाते हैं। यहाँ का 'हूला' नृत्य बहुत प्रसिद्ध है जिसमें नग्नता का ताण्डव नृत्य होता है। पहले यह नृत्य केवल काईवीतियों में होता था अब भारतीयों में भी आता जा रहा है।

खान-पान—हमारी दृष्टि में खान और पान दोनों विगड़े हैं। अण्डे, मांस, मछली का खूब प्रयोग होता है। शराब की खुली छूट है। सिगरेट से बहुत कम लोग बचे होंगे, यहाँ तक की स्कूलों के प्रिंसिपल महोदय विद्यार्थियों के सामने ही दम लगाते हैं। इस खान-पान का प्रभाव क्या है? सन् ७८ में ही तीन

पिताओं ने अपनी पुत्रियों के साथ ही बलात्कार किया। एक पिता ने तो दो-ढाई वर्ष की पुत्री के साथ ही मुंह काला किया। शराब के कारण घर उजड़ रहे हैं। पति-पत्नी के जीवन वर्धा हो रहे हैं।

शाकाहारी परिवार बहुत कम हैं। शायद एक प्रतिशत चावल बहुत अधिक खाया जाता है। खाना सादा होता है विवाहों में भी भात, पूरी और तीन-चार प्रकार का शाक परोसा जाता है।

रहन-सहन—घर का सभी कार्य—शौचालय की सफाई से लेकर वस्त्र प्रक्षालन, और भोजन निर्माण सभी स्वयं करते हैं। नौकर यहां नहीं मिलते। साफ और सुथरे रहते हैं। सभी कठोर परिश्रमी हैं। किसी भी कार्य को हीन दृष्टि से नहीं देखते।

उपज—सबसे अधिक उपज गन्ने की होती है। चार मिलें हैं जिनमें चीनी तैयार की जाती है जो अधिकांश बाहर भेजी जाती हैं। कुछ धान उगाया जाता है और बहुत थोड़ी मात्रा में मकई जो उबाल कर खाने के काम में आती है। सब्जियों में कई प्रकार के बीज, तरबूज खरबूज, खीरा, कटहल, पपीता, केला, नारंगी, अमरुद आदि उत्पन्न होता है। कसावा, येम और डालो—ये तीन कन्द भी भारी मात्रा में पैदा होते हैं, ये विशेष रूप से काइवीतियों का भोजन है। सेव, नासपाती अंगूर आदि बाहर से मंगाये जाते हैं।

यहां कल-कारखाने नहीं हैं। सभी वस्तुएं बाहर से मंगाई जाती हैं। स्व-तन्त्रता के पश्चात् अब सरकार नाना

प्रकार के उद्योग चालू करने की सोच रही है।

अतिथि सत्कार—यहां के निवासी अतिथियों का बड़ा सत्कार करते हैं। भोजन के समय पर कोई भी व्यक्ति कहीं से भी आ जाए अवश्य भोजन खिलाते हैं। मैं लगभग आठ मास सुवा में रहा और मेरे भोजन का सारा खर्च श्री प्राण दत्त जी शाण्डिल ने वहन किया। काई-वीतियों में आतिथ्य की भावना है। स्वयं भूखे रह जायेंगे परन्तु अतिथि को अवश्य खिलायेंगे। स्वयं भूमि पर लेट जायेंगे और अतिथि को खाट पर सुलायेंगे।

विवाहों में यहां खूब लोग जुटते हैं। पांच-पांच छह-छह सौ लोग इकट्ठे हो जाते हैं। जब तक विवाह होता है सभी शान्त बैठे हुए विवाह कार्य को देखते हैं। विवाह सम्पन्न होने पर वर-वधू को आशीर्वाद देकर भोजन करते हैं। इस विषय में भारतीयों को भी उनसे सीखना चाहिए।

मैंने एक वर्ष में फिजी द्वीप के छोटे-बड़े ग्रामों से लेकर बड़े-बड़े नगरों तक सर्वत्र प्रचार किया। सारे फिजी द्वीप को वैदिक धर्म के नाद से गुंजाया। मैंने धर्म के लिए और भारतवालों के लिए लोगों में विशेष श्रद्धा देखी। व्याख्यान सुनने के पश्चात् भी लोग बैठे हुए हैं, इच्छा है और सुनते जाएं।

मैंने अनेक परिवारों का मांस-भक्षण बृम्हपान और मद्यपान छुड़वाया। यदि भारत से निर्लोभी और उच्च कोटि के विद्वान् निरन्तर जाकर प्रचार करते रहें तो वहां धर्म और संस्कृति का उत्थान हो सकता है।



—वैद्य जगदीश बहादुर विशारद (मथुरा)

आर्यसमाज कैसा था ? अब क्या हो गया ?

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने १० अप्रैल १८७५ के दिन भारत की महानगरों बम्बई में आर्य समाज नामक संस्था की स्थापना की थी। यह समय वह था जब देश भर में अनेकों मतमतान्तर फैल रहे थे। जनता में रूढ़िवादिताओं का बोल-वाला था। ईश्वर के प्रति आस्थामूलक प्रवृत्ति का अभाव, अनेकों प्रकार की ढकोसलावाजी फैली हुई थी। अविद्या का साम्राज्य सर्वत्र ही आच्छादित था। सभी व्यक्ति सर्वांश रूप से वैदिक धर्म के विपरीत आचरण करने लगे थे, निराकार और सर्वव्यापी ईश्वर के स्थान पर सभी लोग साकार मूर्तिपूजा की ओर निष्ठावान् होते चले जा रहे थे और साथ ही सारी जनता कुमार्गों का ही अनुसरण करती चली जा रही थी। समाज में अनेकों कुप्रथायें प्रचलित कर दी गयीं थीं, जिन से मानव समाज समष्टि रूप में क्षीण होता चला जा रहा था। इन बुराइयों का मूलोच्छेदन करना और मानव समाज का उत्थान करना ही एकमात्र लक्ष्य महर्षि का था। इसी पवित्र ध्येय को परिलक्षित रखते हुए ही महर्षि ने आर्यसमाज की स्थापना की थी।

आर्यसमाज का उद्देश्य :—

मानव समाज में शिक्षा प्रणाली ऐसी रखी जाये जिसमें स्त्रियों की शिक्षा को

अनिवार्य समझा जाये। हिन्दू समाज का दलित अंग, जिसकी ओर घृणा से देखा जाता था, उसका सर्वत्र तिरस्कार किया जाता था, उसका भी उद्धार किया जावे। अनेकों प्रकार की रूढ़िवादिताओं, कुप्रथाओं कुरीतियों तो समाज-सुधारों और शैक्षणिक कार्यों द्वारा मानव प्रवृत्ति का उस ओर सम्मान उत्पन्न हो, जन कल्याण की ओर सभी लोग रुचि रखने लगे। इत्यादि सभी हितकारी कार्य आर्यसमाज द्वारा करना ऋषि को अभीष्ट था। तभी आर्यसमाज जैसी अनुपम संस्था का निर्माण करना महर्षि ने आवश्यक समझा था।

अपने ध्येय की पूर्ति में स्वामी जी कितने सफल हो सके थे इसका दिग्दर्शन कतिपय निम्न महानुभावों के कथन से स्पष्ट हो जाता है :—

ऋषि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धा-न्जाल अर्पित करते हुये हमारे महान् देश भक्त नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था, “ऋषि दयानन्द उन महान् पुरुषों में से हैं, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया है।”

स्वामी जी कितने राष्ट्रीय विचार-युक्त थे, इस सम्बन्ध में एक भारतीय मुस्लिम नेता श्री हसरत मोहानी ने एक बार कहा था, “देश के कामों में ही

लीजिये। जब और लोग स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे, स्वामी दयानन्द और आर्य समाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार कर रहे थे। मैं खुशी के साथ कहता हूँ कि असहयोग के जमाने से पहले करीब ६० फीसदी आर्यसमाजी स्वराज्य के कार्यों में हिस्सा लेने वाले थे, जबकि अन्य संस्थाओं और सोसाइटियों के दो या तीन फीसदी आदमी ही स्वराज्य का काम करते थे।”

इतना ही नहीं, सु-प्रसिद्ध इतिहासकार श्री यदुनाथ सरकार ने महर्षि दयानन्द के कार्यों को देखकर लिखा है, “जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जायेगा, तब इस नंगे फकीर दयानन्द सरस्वती को उच्चासन पर बिठाया जायेगा।”

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट है और कोई व्यक्ति इस बात से इन्कार भी नहीं कर सकता कि देश के राष्ट्रीय आन्दोलनों में अग्रणी भाग लेने वालों में ऋषि दयानन्द और उनके अनुयायियों का ही शीर्ष स्थान रहा है।

आर्य समाज ने क्या किया ?

कहते हुये हर्ष होता है और प्रत्येक आर्यसमाजी भी गर्व करने का अधिकारी है कि देश भर में मानव निर्माण का कार्य जिस लगन और तत्परता से आर्यसमाज संस्था ने किया, उतना अन्य किसी संस्था ने नहीं किया। देश और समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अर्थात् शिक्षा प्रसार क्षेत्र, स्त्री शिक्षा, पर्दाप्रथा निवारक क्षेत्र, दलित वर्ग उद्धारक कार्य, समाज में फैली हुई कु-प्रथाओं के निवारणार्थ कार्य, समाज सुधार सम्बन्धी

एवं जन कल्याण सम्बन्धी जितने भी कार्य हो सकते हैं, यह सब आर्यसमाज की ही देन है। देश भर में केवल यही एक मात्र संस्था रही है जिसने देश को प्रगति पर अग्रसर किया है। राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन में आर्यसमाज का स्पृहणीय योगदान ऐसा रहा है मानो वह सभी में ओत-प्रोत हो गया हो। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह आंधी-तूफान, बाढ़ आदि सम्बन्धी प्राकृतिक संकटावस्था हो, चाहे देश के पिछड़े वर्ग की शिक्षा प्रसार के लिये हो, चाहे रोग-निवारणार्थ हो अथवा देश को पराधीनता की वेड़ियों से मुक्त कराने का प्रश्न हो, आर्यजन सदैव ही जीवन की आहुति देना तक अपना पावन कर्त्तव्य ही समझते थे। यह कहने तक में भी कोई संकोच नहीं होगा कि देश को पराधीनता से मुक्त कराने हेतु हमारे पूज्य और महान् नेता महात्मा गाँधी द्वारा संचालित सभी आन्दोलनों में तथा उनके द्वारा संचालित हरिजन-उद्धारक आन्दोलनों में भाग लेने वाले ८० या ९० प्रतिशत योगदान आर्यसमाजियों द्वारा ही किया गया था कि जिनको देखकर ही अन्य व्यक्ति भी उन आन्दोलनों में सम्मिलित हुये थे। इन सारी बातों को देखकर यदि यह भी कहा जाये कि इस आधुनिक भारत की निर्माण-संस्था आर्यसमाज ही है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति भी नहीं होगी।

आर्यसमाज की अद्योगति—

परन्तु आज यह विचार करना भी आवश्यक है कि राष्ट्र के जीवन में जबकि हम सर्वत्र देखते हैं कि देश में अनेकों प्रकार से भ्रष्टाचार, घूसखोरी, मद्यपान,

निकृष्ट स्वार्थपरता आदि नये-नये दूषण घर कर गये हैं, आर्यसमाज का क्या स्थान है और यह कि आज आर्यसमाज अपनी सार्थकता एवं अस्तित्व के लिये किन किन अंशों में पूर्ण कर रहा है? कहने में संकोच नहीं होना चाहिये, स्पष्ट यही है कि आज आर्यसमाज अपने ध्येय एवं कर्तव्य से च्युत और विमुख हो चुका है। आज हम देश भर की अनेकों क्या प्रायः सभी आर्यसमाजों में सुनते और देखते भी हैं कि सामाजिक जीवन में आर्यसमाजों का योगदान पूर्व जैसा नहीं रह गया है। अपने मुख्य कार्यों जैसे वेदों का प्रचार, पारस्परिक सद्भावना, स्नेह, विश्वास की वृद्धि, आर्यसमाज के दस नियमों का जनता में प्रचार आदि कार्यों को आर्यसमाज ने सर्वांश में ही भुला दिया है। यहां तक स्वार्थ की भावना स्थानीय रुतिपय आर्यसमाजों के पदाधिकारियों में देखी गई है कि अपनी कुर्सी न छिन जाये, अधुण वनी रहे, अन्य व्यक्ति उन पदाधिकारी वर्ग की चाटुकारिता में ही लगे रहें, इत्यादि कारणों से आर्यसमाजों की सदस्य-संख्या तक की वृद्धि नहीं होने देते हैं, वरन इने-गिने सदस्य प्रतिवर्ष स्थायी रूप से रखते हैं और अपनी कुर्सियां और पद को स्थायी ही रखते हैं। नवीन उत्साही, लगनशील और योग्य व्यक्तियों का समावेश ही आर्यसमाजों में नहीं होने देते। ऐसे आर्यसमाजियों द्वारा आर्यसमाजों में अधिक से अधिक जो कार्यप्रणाली रह गयी है वह केवल यही कि रविवासरीय साप्ताहिक सत्संग, हवन एवं प्रार्थना मात्र ही करके अपने कर्तव्य की इति श्री समझ

ली जाती है। पूर्व जैसी समाज सुधार की भावना, परोपकार तथा जन कष्ट निवारण सेवा कार्यों के प्रति अरुचि तक हो गई है, जिसकी ओर वर्तमान आर्यसमाजों के कर्णधारों या ठेकेदारों का ध्यान या रुझान लेशमात्र भी नहीं रह गया है। साप्ताहिक सत्संगों में प्रायः यही देखा गया है कि कुछ गिने-चुने व्यक्ति ही नगण्य संख्या में वहां आवैठते हैं और संक्षेप में ही लकीर पीटते हैं कि उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन पूर्णरूप में कर लिया।

चूंकि आज के आर्यसमाजों ने प्रायः सर्वथा ही अपने अन्तर्गत प्राचीन शिक्षापद्धति को सर्वांश में तिलाञ्जलि देकर पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को ही अपनाकर लड़के-लड़कियों के हाई स्कूल, इन्टर कालेज अथवा डिग्री कालेज स्थापित कर लिये हैं और उनमें भवन, फर्नीचर आदि के रूप में सम्पत्ति की यद्यपि वृद्धि भी कर ली है, परिणामतः सत्ता का उपयोग करने हेतु सभी आर्यजनों में पारस्परिक स्नेह, सद्भावना एवं विश्वास की अपेक्षा ईर्ष्या, द्वेष, दुर्भावनाओं और अविश्वास का ही प्रादुर्भाव होने लगा है, जिसके परिणामस्वरूप चुनावों के समय पर एक दूसरे के प्रति घृणोत्पादक तथा कटुतापूर्ण व्यवहार करके आपस में गाली-गलौज, लाठी-जूतों तक के अश्लील एवं अशोभनीय कार्य करते हुए वे अल्पांश में भी लज्जित तक नहीं होते हैं। आश्चर्य होता है यह देखकर कि जिन समाज-सुधारों का कार्य करना पहिले ये ही आर्यजन अपना पावन कर्तव्य समझते थे, आज वे ही सारे दूषण हम आज के आर्यसमाजी

कहे जाने वालों ने स्वयं ही अपना लिये हैं। धिक्कार है ऐसे आर्यजनों को जो अपने कुकृत्यों से आर्यसमाजों को कलंकित और बदनाम कर रहे हैं। रोना आता है आज के आर्यसमाजों की यह अधोगति देखकर तथा लज्जा से नत-मस्तक हो जाते हैं। हमारे वे बन्धु आर्यजन जिनके हृदय में आर्यसमाज के प्रति महान् श्रद्धा है और जो आर्यसमाज को देश में ही नहीं अपितु विश्व भर में आर्यसमाज के दस नियमों के पालन किये जाने का स्वप्न देखते हैं। परन्तु कौन सुनता है उन बेचारों के करुण-क्रन्दन को? नक्कार-खाने में तूती की आवाज वाली कहावत ही चरितार्थ होती है, यह सब देखकर किसी कवि ने सच ही कहा है "तीन वर्ण ऊपर के बिगड़े तो शूद्रों का कहना क्या? फूटी आंख लगी ठोकर तो दोष पैर को देना क्या?" अर्थात् जब समाज सुधारक महान् संस्थाओं के कार्यकर्ता वर्ग ही दूषित हो जायें और अपने कर्तव्य से विमुख हो जायें तो सामान्य जन-समुदाय के दूषित हो जाने में कोई आश्चर्य ही नहीं होना चाहिये।

ग्रन्थ मतावलंबी जनसेवक-संस्थाओं के कार्यक्रमों से आज के आर्य-समाजों की तुलना :-

देश भर के प्रत्येक नगर में आर्य-समाज के बोर्ड एवं पताकार्ये फहराती हुई दिखाई देती हैं, परन्तु कहीं भी नियमित रूप से राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं के सुलझाने में आर्यसमाज का योगदान प्राप्त होता हो अथवा सामाजिक कुरी-तियों के निवारणार्थ एवं हरिजनोद्धार सम्बन्धी कोई रचनात्मक कार्य संगठित

रूप से किया जाता हो, ऐसा हम प्रायः किसी एक भी आर्यसमाज में नहीं देखते। इसके विपरीत अन्य धर्मावलम्बियों में चाहे वे हिन्दुओं के मन्दिर हों, मुसलमानों की मस्जिदें हों, ईसाइयों के गिरजे हों अथवा सिक्खों के गुरुद्वारे हों, उन सभी मतावलम्बियों में श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, लग्नशीलता, पारस्परिक सहृदयता एवं सहयोग आदि की बातें ही दृष्टिगोचर होती हैं और वे अपनी सभी कार्य-प्रणालियों के अनुरूप अपना प्रचार कार्य करके सफलता प्राप्त करते हैं, परन्तु आर्यसमाज ने तो अपने सभी कार्यों का दायित्व स्वराज्य-सरकार के ऊपर ही डाल दिया है, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि आर्यसमाज के कार्यकर्ता राष्ट्रीय एवं सामाजिक कार्यों से उपराम होकर संस्थात्मक झमेलों में ही अपने को उलझाये हुये हैं। यह कहना भी असंगत नहीं होगा कि आज आर्यसमाज एक नष्ट-प्राय संस्था मात्र ही रह गई है जो अपने जीवन की घड़ियों को गिन-गिन कर व्यतीत कर रही है। आर्यसमाज के अतीत की कहानी जितनी सुन्दर, प्रभावपूर्ण, राष्ट्र एव समाज के लिये लाभप्रद एवं प्रशंसनीय रही है, उसी आर्यसमाज की आज हम महान् दुःखद स्थिति देखते हैं। यदि आर्यसमाज की यही स्थिति अगले दशक या पच्चीस वर्षों तक और रही तो इसमें सन्देह नहीं कि आर्यसमाज से अनुप्राणित होने वाली पीढ़ी रसातल की ही प्राप्त हो जायेगी और आर्यसमाज का प्राचीन इतिहास भी केवल अतीत के पृष्ठों की कहानी मात्र ही रह जायेगा। अतः आज हम प्रत्येक आर्यसमाजी

गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है कि क्या अब वास्तव में आर्यसमाज के अस्तित्व को बनाये रखने की आवश्यकता नहीं रह गई है।

ऋषि के उद्बोधन को नहीं भूलना होगा :—

हमें नहीं भूलना होगा कि ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अन्ध श्रद्धा के स्थान पर सत्य और विवेक की ही स्थापना की थी। उन्होंने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त न करके केवल आर्यसमाज के दस नियमों के माध्यम को ही अपने उत्तराधिकारी का रूप दिया था। उनका यह उपदेश था कि “सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये” तथा सभी कार्य धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करना चाहिये और ‘प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये वरन सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये’। स्वामी जी ने इन्हीं नियमों को आधार मानकर निजी एवं सामाजिक जीवन में सत्याचरण लाना और सामूहिक हितों के सम्मुख निजी स्वार्थों को तिलजलि देना आर्यजनों के लिये आवश्यक माना था। आर्यसमाज का इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि जब तक आर्यजन इन दस नियमों का श्रद्धापूर्वक पालन करते रहे देश के राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन में उनकी प्रतिष्ठा गरिमा को ही प्राप्त हुई थी। इसके विपरीत जब से हम आर्यजनों ने इन दस नियमों को भुला दिया या इनका पालन करना आवश्यक नहीं समझा तभी से आर्यसमाज संस्था में सत्ता

और पदों की छीना-झपटी, गाली-गलौज, जूतम-पैजार तक होने लगी और तभी से सारी वुराइयाँ हम में प्रविष्ट कर गई हैं। यही एकमात्र कारण है कि आर्यसमाज जायदाद, भवनों एवं मंदिरों की दृष्टि से अत्यन्त व्यापक और विशालकाय दीखता हुआ भी अपने अनुयायियों के मध्य में ऋषि द्वारा बताये गये नियमों के पालन करने में अपने को असमर्थ पा रहा है और आज हम आर्यसमाज की आत्मा को सिसकता हुआ देख रहे हैं।

आर्यसमाज की उपयोगिता के प्रति सन्देह :—

हम में से ही अनेकों आर्यजनों का यह भी मत या धारणा है कि देश के जीवन के लिये आर्यसमाज सब कुछ कर चुका अब आर्यसमाज की कोई उपयोगिता ही नहीं रह गई है। ऐसे व्यक्तियों को एक ही उत्तर दिया जा सकता है कि यदि आर्यजनों ने ऋषि द्वारा प्रणीत नियमों के पालन को आवश्यक नहीं समझा और समाज को तदनुसार निर्माण करने को चेष्टारत नहीं रहे तो आप निश्चय जान लें कि तब आर्यसमाज की समस्त गरिमा नष्ट हो जायेगी। आर्यजनों को स्मरण रखना होगा कि ऋषि दयानन्द के अनुयायी होने का दम भरने वाले हम आर्यजन वास्तव में ऋषि के अनुयायी ही नहीं कहे जा सकते जब कि हम उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण ही नहीं करते हैं। हम दम्भी और बनावटी अनुयायी कहे जाने वालों की अपेक्षा अन्य महानुभावों ने (जो ऋषि के मतावलम्बी भी नहीं थे) ऋषि दयानन्द को महान् पूज्य माना है और देश और

समाज के हित में उनके कार्यों को देखा है और माना है । उनमें से कतिपय महानुभावों के कथन निम्न भांति हैं :—

१. ऋषि के जीवन-कार्यों पर शोध कार्य करते हुए श्री देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय एक बर्गीय सज्जन ने आर्यसमाजियों को ललकारते हुए कहा है, “आप लोग दयानन्द जी के अनुयायी होने का दम्भ करते हो । आप दयानन्द से प्रेम नहीं करते । क्या आप में से कोई उनके नाम पर मरने को तैयार है ? मैं गर्व नहीं करता परन्तु आवश्यकता हो तो मैं दयानन्द के नाम पर अपना शिरच्छेद करने में इतस्ततः नहीं करूँगा” । आगे चलकर ऋषि के जीवन-चरित्र की भूमिका में वे लिखते हैं कि “महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य और गौरांग प्रभु ने सब कुछ किया परन्तु विछिन्न एवं विभक्त भारत की एकता के लिये कुछ नहीं किया । सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द ने ही अपनी वाणी, अपनी लेखनी और अपने कार्यों द्वारा देश की एकता को पुष्ट करने का प्रयत्न किया । उन्होंने विदेशियों के सांस्कृतिक आक्रमण को नष्ट कर आर्य धर्म, सिद्धान्तों और शिक्षा की प्रतिष्ठा की” ।

२. ऋषि दयानन्द की इसी देन को हृदयंगम करते हुए योगी अरविन्द ने अपनी श्रद्धांजलि इन शब्दों में अर्पित की थी; “वेदों का भाष्य करने के बारे में मेरा विश्वास है कि चाहे

पूर्ण अभिप्राय कुछ भी हो, किन्तु इस बात का श्रेय ऋषि दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उन्होंने सर्वप्रथम वेदों की व्याख्या के लिये निर्दोष मार्ग का अनुसरण किया । जंगलों लोगों की रचना कही जाने वाली पुस्तक के धर्मपुस्तक होने का वास्तविक अनुभव उन्होंने ही किया” ।

३. महर्षि की इसी प्रकार की भारतीय दृष्टि से प्रभावित होकर डा. रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने ऋषि को श्रद्धांजलि देते हुए एक बार कहा था कि ‘मेरा प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को जिनकी दृष्टि ने भारत को आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिन के मन में भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया’ ।

भारत की इस सांस्कृतिक धरोहर को अपना अक्षुण्ण बनाने के लिये वास्तव में यदि देखा जाये तो भारतवासियों को ऋषि दयानन्द द्वारा किये कार्यों का मूल्यांकन भी अभी तक किया ही नहीं है । उनके द्वारा बताये गये नियमों पर आधारित आर्यसमाज संस्था भी उनकी शिक्षा को जीवन में अपनाने में अयोग्य सिद्ध हुई है, जो कटु सत्य ही है । ऋषि के प्रति श्रद्धांजलि देने वाले तथा उनके ही अपना प्रवर्तक मानने वाले हम आर्य समाजियों में आज कितने ऐसे व्यक्ति जो श्री देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय के कथनों की भाँति सामाजिक बुराइयों को न करने के लिये असत्य, अन्याय, अत्याचार

प्रेरणादायक पंक्तियाँ

— गुणी मनुष्य अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते अपितु दूसरों से अपनी प्रशंसा सुनकर नम्र हो जाते हैं। —सूक्ति

—अन्याय के सामने जो छाती खोलकर खड़ा हो जाए, वही सच्चा वीर है। —प्रेमचन्द

—लक्ष्य पूरा करने के लिए अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परिश्रम करना ही पुरुषार्थ है। —पतंजलि

—जब आपके अपने द्वार की सीढ़ियाँ मैली हैं तो अपने पड़ोसी की छत पर पड़ी गन्दगी का उलाहना मत दीजिए। —कन्वैयूशियस

—झूठ बोलना तलवार के घाव की तरह है। घाव तो भर जाएगा पर उसका चिन्ह सदैव बना रहेगा। —सादी

—गलती कोई भी मनुष्य कर सकता है परन्तु मूर्ख के अतिरिक्त कोई उसे जारी नहीं रखेगा। —सिसरो

—महापुरुषों की जीवनियाँ हमें याद दिलाती हैं कि हम भी अपना जीवन महान् बना सकते हैं। —लॉगपेलो

और भ्रष्टाचार का समूल नाश करने के लिये अपना शिरच्छेद कराने को तैयार होंगे ? उत्तर स्पष्ट है, “कोई एक भी नहीं” ।

आर्यसमाजियो ! याद रखिये, यदि आर्यसमाज को जीवित और अक्षुण्ण बनाना है, जो ऋषि की पवित्र थाली है तो बुराई और असत्य के विरोध करने में आपको महान् संघर्ष करना होगा और सत्य की प्रतिष्ठा के लिये अपना ही नहीं

अपितु अपनी प्रिय सन्तानों तक का बलिदान आपको देना होगा ! तभी हम अपने प्रिय आर्यसमाज को बचा सकेंगे अन्यथा आप देखेंगे कि देश भर में आर्य-समाज संस्था का केवल चोला मात्र ही अब शेष रह जायेगा । उसमें से आत्मा नाम की चेतना भी नष्ट हो जायेगी और तभी हमारे ऋषि की पवित्रात्मा हमें बारम्बार धिक्कारती हुई व्याकुल हो उठेगी ।





ऋषि दयानन्द

ला० लाजपत राय की दृष्टि में

स्वामी दयानन्द ने आर्य सन्तान को बतलाया कि जो कुछ ज्ञान और सचाई संसार में दिखाई देती है, उसके आदि कारण परमात्मा हैं, क्योंकि वही आदि गुरु हैं। आदि गुरु ने जो शिक्षा दी वह वेद मन्त्रों में वर्णित है और वह वेद मन्त्र सब मनुष्य मात्र का सर्वस्व है। मनुष्य मात्र को उन वेद मन्त्रों के पढ़ने और उन से शिक्षा के प्रकाश ग्रहण करने का अधिकार है। आदि गुरु की शिक्षा और मनुष्य की आत्मा के बीच कोई परदा और कोई रुकावट नहीं। जो बनावटी परदे और रुकावटें परमात्म-ज्ञान और मनुष्य के बीच स्वार्थता या मूर्खता से नियत की गई थी, स्वामी दयानन्द ने उनको उठा दिया, और लोगों को स्पष्ट रीति से परमात्मा के ज्ञान की ज्योति दिखला दी। लोगों को उस स्रोत का पता दे दिया, जिस से कि सब नहरें निकली हैं। मनुष्यों को उस सदैव की ज्योति की झलक दिखला दी जिससे कि समस्त संसार के सारे लैम्प, झाड़ और फानूस प्रकाशित होकर अंधेरे में मनुष्य की सहायता करते हैं। स्वामी दयानन्द के जीवन का यह कार्य महान् कार्य है क्योंकि न बड़े आदमियों को वरंच वंश के विद्वानों को भी जो इस स्रोत से नितांत अनभिज्ञ थे, और चाहे वह हठ और पक्षपात व स्वार्थता से सर्व साधारण को वेदों की शिक्षा के अपात्र बताते थे। परन्तु आप भी वेदों के विषय से नितांत अनभिज्ञ थे। चाहे हिन्दूमात्र यह समझते थे कि हमारा धर्म वेदों पर निर्भर है। प्रत्येक ब्राह्मण भी यही मानता था और कहता था परन्तु न तो सर्व साधारणों को और न ही उनके गुरु ब्राह्मणों को यह विदित था कि वेद क्या हैं, और उनकी शिक्षा क्या है। १८६२ ई० में बाम्बे हाईकोर्ट में एक लायबल (अप्रतिष्ठा) हतक इज्जत का मुकद्दमा हुआ, जिसका मूल यह था कि सत्य प्रकाश समाचार पत्र के सम्पादक ने बल्लभाचार्य गुरु महाराज और उसकी शिक्षा तथा आचार व्यवहार के विरुद्ध एक बड़ा अप्रतिष्ठा द्योतक आरटीकल छपा था, जिसमें उसने यह प्रश्न उठाया कि ऐसी बदचलनी और बदमाशी की शिक्षा हिन्दुओं के प्राचीन धर्मानुकूल कर्तव्य नहीं हो सकती, और बल्लभ सम्प्रदाय एक नया ढकोसला है जो थोड़े दिनों से एक स्वार्थी मनुष्य ने चलाया था। बल्लभ सम्प्रदाय के गुरु ने बाम्बे हाईकोर्ट में अप्रतिष्ठा का दावा किया। मुद्दई, मुद्दालय (वादी प्रतिवादी)

का सहारा वेदों पर था। परन्तु दोनों को विदित न था कि वेद क्या हैं, और उन में शिक्षा क्या है। वादी ने अपने बयान में यह लिखाया था कि हिन्दुओं की प्राचीन पुस्तक यह हैं। (१) पुराण (२) वेद और (३) शास्त्र। परन्तु (जिराह प्रतिवादी के प्रश्नों में) उसको स्पष्ट रीति ने मानना पड़ा, कि उसको चारों वेदों और ब्राह्मणों के नाम भी विदित नहीं थे। वल्लभ संप्रदाय के उस गुरु की यह कथा ही उस मूर्खता के प्रमाण के लिये बहुत थी, जो वेदों के विषय में हिन्दुओं में विस्तृत थी। वरञ्च दयानन्द सरस्वती के संक्षिप्त जीवन से भी इस मूर्खता का प्रमाण मिलता है। उस से और दृढ़ साक्षी की क्या आवश्यकता है कि जब स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बाल शास्त्री जैसे सुप्रसिद्ध काशी के मुख्य और सैकड़ों अन्य संस्कृत के विद्वानों को लेकर स्वामी दयानन्द से मूर्तिपूजन का चर्चा करने के लिए आए, तो उन्होंने मंत्र भाग के स्थान गृह्य सूत्रों के कुछ पत्र उनके हाथ में दे दिये, और उन्हीं को वेद कह कर प्रकट किया। उस समय को जाने दीजिये, अब तक लाहौर सनातन धर्म सभा का यह मन्तव्य है कि पुराण केवल इलहामी (ईश्वर प्रणीत) ही नहीं वरञ्च यह उसी समय उतरे हैं जब कि वेदों का मन्त्र भाग उतरा है। हालांकि साधारण सी संस्कृत जानने वाला भी बतला सकता है कि पुराणों के ईश्वर प्रणीत होने के विषय में कुछ ही दावा क्यों न हो, परन्तु पुराणों के समय के विषय में किसी को संदेह नहीं हो सकता। स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेश से पहले यूरोप के संस्कृतज्ञ यह प्रकट कर चुके थे कि किसी समय में हिन्दू विद्वानों ने पुराणों को इलहामी होने की पदवी नहीं दी। प्रोफेसर गोलडस्टकर एक स्थान में क्या ठीक कहते हैं कि “जब कोई वंश अपने उपदेशकों के बहकाने से और अविद्या के अंधकार से इस प्रकार गिर जावे, कि पुराणों जैसी पुस्तकों को ईश्वर की ओर से इलहामी मान लेवे, तो उनके विषय में एक ही परिणाम निकल सकता है और वह यह है, कि वंश अपनी प्रारब्ध की उस सीमा तक गिर गई है, कि जिस से उसका फिर उठना आवश्यक है। हिन्दू जाति उस सीमा तक पहुंच गया है, और अब देख रहे हैं, कि वह किधर पाँव उठाती है। माना कि वह कई सदियों से इंगी स्थान पर खड़ी है, परन्तु वर्तमान समय के भवितव्य सोशियल और पोलिटिकल का बल ऐसा प्रबल है, कि उसका आधुनिक स्थान पर स्थित रहना असम्भव है। जब से हिन्दुओं ने पुराणों को अपने धर्म का स्रोत माना है तब से धर्म सम्बन्धी ठगरी के मार्ग में जो रुकावटें थीं वह सब दूर हो गईं, और ऐसे सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये कि जिन्होंने केवल धर्म को ही न गिरा दिया, वरंच सोसाइटी को चकनाचूर कर दिया। ऐसे-ऐसे नियम बनाये गए जो कि मनुष्य के मन (दिल व दिमाग) के लिये लज्जाजनक हैं, ऐसे-ऐसे दस्तूर जारी कर दिये गये कि जो प्रत्येक हिन्दू के वास्ते चिन्ता और लज्जा का हेतु हैं। इस बात की आवश्यकता नहीं कि अधिक विस्तार से इन दस्तूरों की परीक्षा की जावे। जैसा कि तन्त्र

लिट्रेचर की कलई खोलकर लोगों को दिखाई जावे या हिन्दुओं के बुद्धिमान् विभाग को इस बात का विश्वास देने के लिए अधिक परिश्रम किया जावे, क्योंकि कलकत्ता, बम्बई और बनारस से जो लेख प्रकाशित होते हैं और समाचार पत्र और पत्रिकाओं के द्वारा जो विचार प्रकट किये जाते हैं, उन से प्रकट होता है कि जो लोग मस्तिष्क सामर्थ्य में योरूप के पण्डितों की उच्च श्रेणी की तुलना कर सकते हैं, उनके सामने ऐसी साक्षी देने की आवश्यकता नहीं; जिससे यह सिद्ध हो सके, कि उनकी वंश की वर्तमान दशा प्राचीन समय से कंसी विपरीत है, परन्तु तो भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि इन विद्वानों के समस्त यत्न उस खतरे को रोकने के लिये अपर्याप्त है, जो कि हिन्दू वंश की भविष्यत् में हैं। जब तक कि वह बड़ी दिलेरी से रोग के कारण को नहीं पकड़ते। योरूप के धार्मिक संशोधन का हवाला देकर उक्त प्रोफेसर लिखते हैं कि "इस बुराई को रोकने का कोई उपाय नहीं है, सिवा इसके कि सर्व-साधारण को उन असली पुस्तकों के देखने की आज्ञा दी जावे, जो इस समय एक अतीव थोड़े भाग ब्राह्मणों के अधिकार में हैं, जो उसके अर्थों को समझ सकते हैं, और वह लिट्रेचर का भाग हिन्दू मात्र को पढ़ाया जावे जिससे यह सिद्ध होता है कि हिन्दुओं के धर्म की असली जड़ न ब्राह्मण हैं और न पुराण वरंच ऋग्वेद के मन्त्र हैं।

क्या हम नहीं जानते कि प्रोफेसर गोलडस्टकर की इस योग्य अपील को न कलकत्ता और न बम्बई के विद्वानों ने सुना, और न काशी के पण्डितों ने ही, यदि किसी मनुष्य के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुए, केवल उत्पन्न ही नहीं वरंच यदि किसी मनुष्य ने उन्हीं विचारों को अपने जीवन का उद्देश्य बना कर हिन्दू धर्म के संशोधन का भार उठाया, तो वह स्वामी दयानन्द जी महाराज थे। स्वामी दयानन्द जी ने युक्ति-बल से, प्रमाणों के बल से, इतिहास के बल से, पूर्ण रीति से सिद्ध कर दिया कि पुराण हिन्दुओं की इलहामी पुस्तक नहीं हो सकती, और न है, जो कोई पुराणों के मजमून पढ़ेगा, वह तत्काल इस विषय में स्वामी जी की व्यवस्था को मान लेगा। उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि हिन्दुओं के इलहामी पुस्तक जिस पर उनका धर्म निर्भर है, न पुराण न शास्त्र न उपनिषद् और न ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, किन्तु केवल संहिता हैं। उन्होंने साबित कर दिया कि चाहे ब्राह्मण, उपनिषद और शास्त्र ऋषि प्रणीत हैं परन्तु वे आप वेदों के आश्रय हैं, और वहीं तक माननीय हैं जहाँ तक वेदों के अनुकूल हैं या वेद विरुद्ध नहीं। सिद्धान्त यह है कि केवल चारों वेद ही ईश्वर का ज्ञान हैं। उन्हीं पर प्राचीन वैदिक धर्म की बुनियाद है, और वही एक मात्र हमारे आश्रय हैं, वही हमारे लिए अन्तिम प्रमाण हैं। शास्त्रकारों के लेखानुसार वही स्वतः प्रमाण हैं, और वही सत्पुस्तक हैं, जिनमें सत्य के सिवा और कुछ नहीं।



— श्री इन्द्र प्रकाश

शरारतपूर्ण ईसाई हथकंडे

कुछ दिन पूर्व जब लोकसभा में प्रश्न किया गया तो गृहमंत्री ने धर्म निरपेक्ष होने की आड़ लेकर बहस में अड़ने से इंकार कर दिया किन्तु यह स्वीकार किया कि १ जनवरी, १९७७ को भारत में रजिस्ट्रित मिशनरियों की संख्या ३७३२ हो गयी थी। धर्म निरपेक्ष सरकार को कैसर के खतरों के संबंध में अपनी आंखें खोलनी होंगी जो प्रभुसत्ता को प्रभावित कर रहा है, क्योंकि धर्मान्तरण के अन्तर्गत निहित मूल सिद्धान्त यह है कि “धर्मान्तरण का अर्थ राष्ट्रान्तरण है।” उस अन्तर को न समझते हुए जनता सरकार की वर्तमान नीति अपनी पूर्व प्रक्रिया और व्यवहार से पृथक् होगी, जिसकी अनुशंसा करेंगे और नियोगी आयोगों ने की थी।

१९४७ के बाद विश्व की ईसाई शक्तियों ने यह अनुभव किया कि हिन्दुओं ने कांग्रेस द्वारा दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को मान्यता देने पर ही अपनी मातृभूमि का विभाजन स्वीकार किया था। वे अन्ततोगत्वा ईसाई देशों व स्थानीय ईसाई आबादी के लिए वित्तीय साधनों के पीछे हो सकती है और पाकिस्तान के समान ही ईसाई स्थान की मांग उठा सकती है।

कुछ वर्ष पूर्व समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था कि भारतीय ईसाइयों की अखिल भारतीय परिषद ने भारत की भूतपूर्व प्रधान मंत्री को ज्ञापन देकर उनसे यह मांग की थी कि वह संसद व राज्य विधान मंडलों में, १ करोड़ २० लाख के ईसाई समाज को प्रतिनिधित्व दिलाने में असफल रहने पर उनके प्रतिनिधियों को नामजद करने के सम्बन्ध में आश्वस्त होने के लिए पग उठाएं। उस ज्ञापन की प्रतियाँ संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को भी प्रेषित की गयीं।

(स्टेट्समैन ३०-७-१९६६)

दक्षिण और पूर्व में ईसाई होमलैंड की स्थापनार्थ योजनाएं बन रही हैं। केवल ईसाइयों पर आधारित एक राजनीतिक पार्टी क्रिश्चियन रिपब्लिकन पार्टी का गठन भी जुलाई, १९७० में मद्रास में किया गया था। उसका उद्घाटन समारोह सेन्ट जेवियर्स चर्च ग्राउण्ड ब्राडवे में श्रीमती भूपति अम्माल की अध्यक्षता में हुआ था। यद्यपि श्री अम्माल ने यह घोषणा की थी कि यह पार्टी ईसाई समुदाय के विकास

व कल्याण के लिए संघर्ष करेगी।" मुख्य वक्ता श्री फ्रान्सिस रोयेन ने कहा था "जब श्री जिन्ना मुसलमानों के पृथक् देश के लिए लड़े, हम ईसाइयों ने कहा था कि हमें अपने लिए कोई अलग भूमि नहीं चाहिए और हम बहुसंख्यक समुदाय के साथ ही रहेंगे। किन्तु अब इस देश से हमारी आशाएं तिरोहित होती जा रही हैं। हम ऐसा अनुभव करते हैं कि हमारी अपनी एक पृथक् पार्टी हो जो हमारे हित के लिए संघर्ष करे। इस सम्मेलन में 'क्रिश्चियन पार्टी अमर रहे' और 'क्रिश्चियन होमलैंड अमर रहे' के नारे भी लगे।

अतएव उन्होंने निर्धन हिन्दू वनवासियों को ईसाइयत में धर्मान्तरित करने का अभियान पूरे भारत में व्यापक किया है। विशेषतः पूर्वी व दक्षिणी भारत में यह चलाया जा रहा है। गणना आँकड़ों से उनकी सफलता भी प्रकट होती है। १९५१ में भारत में ईसाइयों की जनसंख्या ८३,९२,०२३ थी जो १९६१ में बढ़कर १,०७,२८,०,८६ हो गई और गत-जनगणना में तो यह १,४२,२३,३८३ तक जा पहुँची। १९५१ में उनकी जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या का २.३५ प्रतिशत थी। १९६१ में २.४४ प्रतिशत व १९७१ में २.६० प्रतिशत। १९७१ में हम देखते थे कि नागालैंड में ईसाई जनसंख्या का अनुपात ६६.७६ प्रतिशत रहा जबकि १९६१ में यह ५२.९८ प्रतिशत ही था। मेघालय की कहानी भी यही है। वहाँ भी ईसाई ३५.२१ प्रतिशत से बढ़कर कुल जनसंख्या का ४६.९८ प्रतिशत हो गए हैं। मणिपुर में ईसाई १९.४० प्रतिशत से बढ़े हैं। यह वृद्धि १९६१-७१ की दशान्दी के दौरान हुई है। दो वर्ष बाद अर्थात् अगली जनगणना में जो १९८० में होगी आंकड़े कुछ अलग ही भयावह चित्र पेश करेंगे।

हाल ही में एक अमेरिकन बिशप विल्ली ग्राहम नागालैंड आए थे। उन्होंने लगभग एक लाख हिन्दुओं को धर्मनिरपेक्ष सरकार की छत्रछाया में ईसाई मत में दीक्षित किया। मैं समझता हूँ कि विश्व इतिहास में कभी भी संपन्न हुआ, यह प्रथम सामूहिक धर्मान्तरण है।" (विनायक वसंत पोते-पूना, १२-११-१९७३ को आर्गनाइजर में प्रकाशित एक पत्र) यह न तो शांतिपूर्ण शिक्षाओं का नतीजा है और न ही ईसाइयत के सर्वोच्च (यदि वे हैं तो) धार्मिक सिद्धान्त के प्रचार का ही परिणाम है और न ही यह 'अपने शत्रुओं से भी प्यार करो', 'यदि तुम्हारे एक गाल पर कोई चपत मारता है तो दूसरा भी उसके सामने कर दो।' (मैथ्यू, चैप्टर V) के पावन उपदेश का प्रतिदान है। ये एक पवित्र वाक्य है। जहाँ ईसाई बहुसंख्या में हैं, वहाँ उन्होंने हिन्दुओं का जीवन दूधर कर दिया है। दक्षिण में उनके पुरुष या महिला अथवा देवालय सुरक्षित नहीं हैं। उदाहरणतः "केरल में अल्पसंख्यक समुदाय अराया (हिन्दू मछियारे) शरणार्थियों के तौर पर रह रहे हैं। पुलिस उनको लैटिन ईसाइयों

के संगठित हमलों से बचाने में हस्तक्षेप करने में असफल रही है।"

(दि करेन्ट दिनांक २२-४-१९७८)।

हजारों हिन्दू लड़कियों को वप्तिस्मा के बाद यूरोप के विभिन्न भागों में भेजा गया है। २७ मार्च, १९७२ को श्री वावके बडवकन (कृषक थोजीलाली पार्टी) ने केरल विधान सभा में मांग की है कि 'राज्य और केन्द्रीय सरकारें यूरोपीय कान्वेन्टों को नन सप्लाई करने के इस राष्ट्रीय अपमान को समाप्त करने के लिए प्रभावी पग उठाए जाएं'।

'क्रिश्चियन अवेक' में प्रकाशित एक लेख में इस बात पर बल दिया गया था "जब क्राइस्ट और देश दोनों के बीच निष्ठा को लेकर विवाद हो तो सच्चे ईसाई के लिए आवश्यक है कि वह क्राइस्ट के प्रति आदेश पालन का चयन करें (नेशनल क्रिश्चियन कौंसिल रिव्यू, अप्रैल, १९५५, पृष्ठ १५८) क्योंकि क्राइस्ट का तात्पर्य वर्तमान क्रिश्चियन शब्दकोष में चर्च है, सम्पूर्ण निष्ठा क्रिश्चियन चर्च के राजनीतिक साम्राज्य को समर्पित होती है। ऐसा होने से स्वयमेव ही वे अपने जन्म देने वाले देश से विश्वासघात करेंगे।

उनके हाथ अपावन हैं, जो माँग इस सम्मेलन में की गई है, उसका अन्ततोगत्वा तात्पर्य यह है कि सरकार की सेवाएं व सुविधाएं इस प्रकार वितरित हों, उदाहरणतः मुसलमानों को कम से कम २० प्रतिशत मुस्लिम अल्पसंख्यकों के रूप में मिलें। क्रिश्चियन अल्पसंख्या के तौर पर ईसाइयों को १५ प्रतिशत स्थान मिलें और उनके धर्मान्तरितों के लिए भी ५ प्रतिशत से कम न हों। हिन्दू अनुसूचित जातियां भी ३० प्रतिशत से कम में सन्तुष्ट न होंगी। अन्य २५ प्रतिशत अब जनता सरकार द्वारा निर्मित एक नवीन अल्पसंख्यक पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित किए जा रहे हैं। सिख भी इस बटवारे में ५ प्रतिशत के लगभग पाएंगे। यदि तथ्यांकित अल्पसंख्यकों और कमजोर वर्गों को ये सुविधाएं व उपहार मिलेंगे तो शेष जनसंख्या अर्थात् सवर्ण हिन्दुओं को जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आते हैं, और जो देश में हिन्दू जनसंख्या का ५० प्रतिशत है, केवल अपनी अग्रिम शिक्षा और बुद्धिमत्ता के कारण आत्म विस्मृति का मार्ग अपनायें और अपने बालकों के हाथ में भी भिक्षापात्र देकर बेरोजगारी के रूप में सड़कों पर ढेल दें। यह उनकी किस्मत का परिणाम नहीं है अपितु शासकों द्वारा गत तीस वर्षों से चुनाव में इन वर्गों का वोट पाने के लिए अपनाई गई अल्पसंख्यक तुष्टीकरण नीति का स्वाभाविक प्रतिदान है। पिछड़े वर्गों व अशिक्षित लोगों को छोड़कर कोई भी मोहक नारों व शब्दों से मूर्ख न बनेगा! सत्तारूढ़ दल चाहे वह कांग्रेस हो वा जनता, जानबूझ कर सभी नागरिकों को अवसर की समानता संबंधी संविधान की धारा की अवहेलना की है! धारा १६ में कहा

गया है "राज्य अन्तर्गत सेवाओं में पदों या रोजगार के लिए किसी भी नागरिक के साथ जन्मस्थान, निवास, धर्म, जाति वर्ण अथवा निवास आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करता जाएगा।" इस आदेशात्मक प्रावधान के बावजूद, सत्तारूढ़ दल धारा के क्लज ४ का सहारा लेता है और यह भूल जाता है कि यह क्लज केवल विशिष्ट स्थितियों के लिए है और इससे मुख्य धारा का निषेध नहीं किया जा सकता। क्लज ४ के अनुसार 'राज्य को कोई भी बात इस बात से नहीं रोकेगी कि वह नागरिकों के किसी ऐसे पिछड़े वर्ग के लिए नौकरियों में नियुक्तियों के लिए कोई प्रावधान बनाए, जो राज्य के मत में राज्य के अन्तर्गत सेवाओं में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं पा रहा है।'

कानून को सत्तारूढ़ दल द्वारा अल्पसंख्यकों व अन्य पिछड़े वर्गों के मत पाने के लिए ऐसे ढंग से तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है कि आगामी चुनाव में उसका मार्ग प्रशस्त हो। सत्तारूढ़ लोग इस बात की परवाह नहीं कर रहे कि संविधान की अवहेलना होती है या बहुसंख्यक सवर्ण हिन्दुओं से धोखा होता है। उनकी एकमात्र चिन्ता इस बात की है कि उसी प्रकार इन लोगों की मदद से सत्ता की कुर्सी से चिपके रहें जैसे कि कांग्रेस स्वतन्त्रता के बाद तीस वर्ष तक सत्ता में टिकी रही जब तक कि श्रीमती इन्दिरा गांधी ने आपात् स्थिति लागू करके ऐसा अभूतपूर्व दमन नहीं किया कि जिससे मतदाताओं ने कम से कम एक बार तो शिक्षा ग्रहण की और उन्हें सत्ता से हटा दिया। सवर्ण हिन्दू भी ऐसा ही कुछ कर सकते हैं। ❀

आप अपने बच्चों से निराश क्यों ?

अगर आप अपने बच्चों की पढ़ाई से निराश हैं तो आप उसको गुरुकुल सिराथू (इलाहाबाद) में प्रविष्ट करायें। यह गुरुकुल १५ वर्षों से गुरुकुलीय पद्धति पर छात्रों का चारित्रिक शैक्षणिक तथा बौद्धिक विकास करता है।

नियमावली निःशुल्क मंगाकर प्रवेश करावें। भोजन-शुल्क केवल ४५-०० रु० लिया जाता है। आचार्य, शास्त्री एवं मध्यमा के छात्रों को भोजन शुल्क में छूट। प्रवेश १ जूलाई से प्रारम्भ।

—रमामित्र शास्त्री

प्राचार्य

गुरुकुल वैदिक संस्कृत महाविद्यालय सिराथू (इलाहाबाद)

पाश्चात्य न्यायालयों में विलक्षण दावे

पाश्चात्य देशों के नागरिक हमारे देश से सर्वथा विपरीत कैसे-कैसे नुकतों पर न्यायालय का दरवाजा खटखटाते हैं, इसे पढ़कर आप विस्मित रह जायेंगे !

‘कानून अंधा है !’ इस उक्ति का जनक कौन था यह किसी को याद नहीं रहा, लेकिन पश्चिमी राष्ट्रों के न्यायालयों में, कानून का आधार लेकर जिस तरह के विलक्षण दावे पेश किये जाते हैं उन्हें देख-सुन कर यह मानना पड़ता है कि इस उक्ति का जन्म पश्चिम में हुआ होगा। भारतीय न्यायालयों में भी कभी-कभी विलक्षण मुकदमे आते हैं; परंतु पाश्चात्य न्यायालयों की बात ही निराली है।

यहां कतिपय यूरोपीय अदालतों में पेश किये गये विचित्र दावों के कुछ मनोरंजक तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

खुफिया पुलिस पर दावा

अमरीका के मिनेसोटा नगर में एक आदमी ने अपनी पत्नी से तलाक लिया। थोड़े ही दिन बाद उसने खुफिया पुलिस के एक कर्मचारी पर दावा ठोक दिया। उस ने अदालत में बयान देते हुए कहा—‘पत्नी के चरित्र पर संदेह होने के कारण मैं ने प्रतिवादी खुफिया पुलिस,

कर्मचारी पर उस की जांच करने का कार्य सौंपा। उसके द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर मैं ने अपनी पत्नी से तलाक लिया। लेकिन अब जा कर मुझे यह मालूम हुआ कि उस कर्मचारी ने जो रिपोर्ट दी थी वह मेरी पत्नी के बारे में न हो कर किसी दूसरी स्त्री के बारे में थी।’

कमाई डूब गई

मैसाच्युसेट्स के दो निवासियों ने वहां की रेलवे कंपनी पर १० हजार डालर का दावा किया था। उन की शिकायत इस प्रकार थी—‘गाड़ी देर से छूटने के कारण हमें घुड़दौड़ के मैदान पर पहुंचने में देर हो गयी। घुड़दौड़ में दांव न लगा सकने के कारण हम उस दिन मिलने वाली लंबी रकम से वंचित रहे, इसलिए रेलवे कंपनी हमें हरजाना भरे।’

काव्य-भोजी गधा

स्पेन के एक कवि ने अपने मकान-मालिक के विरुद्ध मुकद्दमा दायर किया

और क्षति पूर्ति के रूप में लंबी रकम मांगी। उसकी शिकायत थी कि मकान मालिक के गधे ने कमरे में घुस कर उस के सभी अप्रकाशित काव्यों की पांडुलिपियां साफ कर दी थीं।

दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति

दुर्घटनाओं के कारण हुए नुकसान की भरपाई के लिए किये गये अनेक विचित्र दावे पाश्चात्य न्यायालयों में सुनने-पढ़ने को मिलते हैं। एक बार अमरीका के एक गोल्फ खिलाड़ी ने एक मोटर मालिक के विरुद्ध दावा ठोक दिया। उस का कहना था—‘मोटर दुर्घटना से मेरे कंधों में जो दर्द रहने लगा, उस के कारण खेलते समय मेरे १०-१५ निशाने गलत हो गये।’

इंग्लैंड की एक महिला ने भी एक मोटर मालिक पर इसी तरह के हरजाने का दावा दायर किया। उसकी शिकायत थी—‘दुर्घटना में लगी चोटों के कारण मैं अपने पति के प्रिय खाद्य पदार्थ बनाना भूल गयी।’

‘मोम से चिकनी की हुई जमीन पर नृत्य करवाया गया। इसलिए मैं गिर पड़ी और मेरा हाथ टूट गया’—इस शिकायत के आधार पर कैलिफोर्निया की एक नर्तकी ने मदिरालय के विरुद्ध दावा दायर किया। इसी तरह, मदिरालय के बारजे में पैर फंस जाने से चोट लग जाने के कारण एक पियक्कड़ ने भी हरजाने का दावा दायर किया था।

पैकेट नहीं मिला

‘पैसे डालने पर सेब का पैकेट देने वाली मशीन से पैकेट नहीं मिला। इस

लिए अन्दर डाली गयी ४६ सेंट की रकम वापस मिलनी चाहिए’—यह मांग थी एक राहगीर की, जिस ने न्यूयार्क की अदालत में सिर्फ ४६ सेंट के लिए मुकद्दमा दायर कर दिया था।

घाटा-पूर्ति

न्यू इंग्लैंड के एक व्यापारी ने अपने डाक्टर के विरुद्ध घाटापूर्ति का दावा ठोक दिया। बयान में उस ने कहा—‘डाक्टर ने बतलाया था कि अमुक तारीख तक मेरी मौत हो जायेगी। मैं ने उस के कथन के आधार पर जल्दी-जल्दी अपने धंधे का सभी सामान सस्ते भाव बेच डाला। परंतु बतायी हुई तारीख पर मेरी मौत नहीं हुई।’

ऐसा ही एक दावा चिली के एक व्यापारी ने वहां की ऋतु-विज्ञानशाला के ऊपर दायर किया था। इस का कहना था कि ऋतु-विज्ञानशाला ने भविष्यवाणी की थी कि अमुक दिन पानी बरसेगा। किंतु उस दिन पानी तनिक भी नहीं बरसा। इस कारण गांव के लोग शहर में नहीं आये और माल की बिक्री न होने के कारण हमें घाटा हुआ।

करार-भंग

स्वीडन के एक नागरिक ने प्रयोगशाला के लिए अपना शरीर देने का वादा किया। किंतु बीच में उस ने अपने दो दांत निकलवा दिये। इस पर प्रयोगशाला के संचालकों ने उस पर मुकद्दमा दायर कर दिया। उन की आपत्ति थी कि दो दांत निकलवाने से पहले उस आदमी ने प्रयोगशाला से आज्ञा नहीं ली।

—सव्यसाची

आओ देखें अपना देश

—ब्रह्मानन्द पाण्डे

औरंगाबाद : एक ऐतिहासिक नगर

स्वदेश का कण-कण इतिहास की अनेक घटनाओं से परिपूरित है। आर्य जाति के उत्थान और पतन की अनेक घटनाएं इन नगरों से संबद्ध हैं। ऐसा ही एक प्राचीन नगर है औरंगाबाद भी। यहां प्रस्तुत है उसके अतीत और वर्तमान की एक झंकी।

—संपादक

बाँदावरी नदी तट का औरंगाबाद व पैठन के बीच का प्रदेश बड़े प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। भगवान् बुद्ध के समय भारत में जो १६ बड़े राज्य थे वे सोलह महाजनपद के नाम से जाने जाते थे। उसमें अश्मक नाम के जनपद का भी जिक्र आता है जिसकी राजधानी पैठण या प्रतिष्ठानपुर थी।

सम्राट् अशोक की मृत्यु के बाद जब मौर्य साम्राज्य का अन्त हुआ, तब महाराष्ट्र के सातवाहन राजवंश के लोगों ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उनकी राजधानी पैठण थी। सातवाहन राजवंश के सबसे पराक्रमी राजा गौतमीपुत्र सातकीर्ण के नाशिक की गुफाओं में पाये गये शिलालेख में इस राज्य सत्ता के अन्तर्गत प्रदेशों के नाम दिये गये हैं। जिसमें पहला नाम अस्सक (अश्मक) है। इसी अश्मक प्रदेश का उल्लेख सोननद जातक, अस्सक जातक इत्यादि बौद्ध ग्रंथों, बृहन्नारद पुराण, गरुडपुराण, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, वराहमिहिर की बृहत्संहिता आदि ग्रंथों में भी पाया जाता है। सारांश यह है कि अश्मक प्रदेश प्राचीन काल से ही सर्व विदित था।

महाराष्ट्र का आदि काव्य—गाथा सप्तशती

इसी सातवाहन वंश में कवि वत्सल नाम के एक प्रसिद्ध राजा भी हुये थे। उन्होंने सामान्य जनता द्वारा रचित चार करोड़ गाथाओं का संग्रह करवाया था। इसमें से ७०० चुनिंदा गाथाओं को एकत्रित कर उसने उसका नाम गाथा सप्तशती रखा। गाथा सप्तदशी महाराष्ट्री का पहला प्राकृत काव्यग्रन्थ है। अतिशय सरस व

रसाल यह रचना मानी जाती है। ग्रन्थ का कल्पनाविलास बड़ा रम्य है और गाथा-कोश से कालिदास आदि कवियों ने यथेच्छ उद्धरण लिये हैं।

अश्मक देश व स्कंद यक्ष

महामाधुरी एक प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ है। दक्षिणपथ के पवित्र स्थलों का विवरण देते हुए इस ग्रन्थ में प्रतिष्ठान नगरी का जिक्र है। इस नगर के पास स्कंद यक्ष का चैत्य था। स्कंदयक्ष यानी खण्डोवा औरंगाबाद के दक्षिण में सातारा नामक स्थान पर खण्डोवा का प्राचीन स्थान है। इस जगह अहिल्याबाई होलकर ने एक बड़ा सुन्दर मन्दिर बनवाया है। यह मंदिर इस समय यद्यपि अप्रसिद्ध व उपेक्षित है तथापि उस की शिल्प व नक्कासी अवर्णनीय है। हम औरंगाबादवासियों के लिए यह स्थान बड़ा गौरव रखता है। सातारा की पहाड़ी में दो अधूरी गुफाएं भी हैं।

निपट निरंजन की गुफाएं

मराठवाडा विद्यापीठ की पहाड़ियों में पूर्ण और सुन्दर गुफाओं का एक समूह है। यहां प्रसिद्ध सन्त निपटनिरंजन की समाधि है। उनके नाम से इन गुफाओं को निपटनिरंजन की गुफाएं कहते हैं। गुफाओं का पुराना नाम राजतडाग की गुफाएं है, इस प्रकार का जिक्र कन्हेरी की गुफाओं में मिले एक शिलालेख में पाया गया है।

राजतडाग गुफाओं के तीन भाग हैं। पहाड़ी के अत्यन्त पूर्वोत्तर भाग में जो गुफाएं हैं वे अपूर्ण हैं किन्तु प्रथम दो समूह जो गुफाओं के हैं वे पूर्ण हैं और गुफाएं भी सुन्दर हैं।

अष्टमहामय का दृश्य

इस गुफा-समूह में सबसे सुन्दर और परिपूर्ण गुफा गुफा नं० १ है। इन बौद्ध गुफाओं पर ब्राह्मणी वास्तुकला की छाप अत्यन्त स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इन गुफाओं में एक महत्त्वपूर्ण शिल्प पट है इसे अष्टमहामय शिल्प पट कहते हैं। गुफा में घुसते ही बायीं तरफ विशाल बोधिसत्व पद्मपाणि अवलोकितेश्वर की मूर्ति हमारी आंखों को खींच सी लेती है। सशक्त पुरुषत्व व प्रशान्त मुद्रा धारण किए हुये इस विशाल आकृति का एक हाथ अभय मुद्रा देते ऊपर उठा हुआ है दूसरे हाथ में कमल पुष्प गुच्छ सुशोभित है। पद्मपाणि के दाहिने व बायें हाथों में आठ नित्य प्रापंचिक भय दर्शाए गए हैं।

यहां प्रत्येक स्थान पर पद्मपाणि अवलोकितेश्वर—वस्त्र संभालते अभयमुद्रा में इंगित करते अन्तराल से शीघ्र ही मानवता की सहायता में बाहर आ रहे दीखते हैं। इस दृश्य को देखते-देखते संसार की नश्वरता मन को स्वभावतः स्वीकारता है।

इन गुफाओं में तारा, मामुखी, लोचना, हारिती, पांचिक आदि बौद्ध देवी देवताओं की मूर्तियां हैं।

राष्ट्रकूट राजवंश

ईसा की आठवीं सदी के बाद हुए राष्ट्रकूट राजवंश के प्रथम सम्राट् दन्ति दुर्ग साहसतुंग का जिक्र एलोरा की दशावतार गुफा में प्राप्य शिला लेख में है। इस राजा के भतीजे शुभतुंग कृपणराज प्रथम ने एलोरा की गुफाओं का निर्माण करवाया। यानी एलापुर वेरुल के राष्ट्रकूट राजाओं का राज्य औरंगाबाद परिसर में था।

राष्ट्रकूटों ने एलोरा की गुफाएं खनित करवायी, साथ ही देवगिरि का किला भी उन्होंने ही निर्मित करवाया होगा। ऊपर से छोड़ी गई तेल की बूंद सीधे नीचे आ जाए इतनी बारीकी से खोदी गई देवगिरि की पहाड़ी और किले के भीतर की गुफा का स्मरण दिलाने वाला सुरंग मार्ग उपयुक्त तथ्य को साबित करता है। राष्ट्रकूटों के बाद देवगिरि में परिसर के यादव राजाओं ने अपने स्वतंत्र साम्राज्य की स्थापना की। इस वंश में मल्लम (पंचम) जेतुगी, सिंघलदेव, कृष्णदेव, महादेव, आमणदेव, रामचन्द्रदेव आदि महत्वपूर्ण पराक्रमी राजा हुए। यादवों की विशाल नगरी का नाम कटक था। श्री ज्ञानेश्वर ने अपनी ज्ञानेश्वरी के बारहवें अध्याय में देवगिरि का वर्णन किया है। महानुभाव साहित्य में भी कटक का उल्लेख बार-बार आता है। श्री चक्रधर की एक शिष्या देमती कटक की थी। कटक बाद में कटकी बन गया और कटकी का बाद में अपभ्रंश हो खडकी बन गया और यह खडकी ही औरंगाबाद शहर का पुराना नाम है। रामचन्द्र यादव की राज्य सभा के कवि नरीदरोंने अपनी एक ओवी में कटक का वर्णन इस प्रकार किया है:

तेथ सुखांचा आंकणा चंद्रु ।

त्याणे जितिला तीर समुद्र

तें कटक वानिताये कवि नरीं । यादव रायाचे ।

अलाउद्दीन का आक्रमण

कटक नगर जिस समय अपनी सम्पूर्ण वैभवपूर्ण अवस्था में था उस समय ही उसे अधिनष्ट का आघात सहना पड़ा। अलाउद्दीन ने देवगिरि पर आक्रमण किया (१२९६ ईसवी.) यादव राज्य का पतन हुआ और देवगिरि का नाम दौलताबाद में परिवर्तित हो गया—किले आजम दौलताबाद।

इसके पश्चात् औरंगाबाद का परिसर अनेक आक्रामकों का बलि पड़ा खिलजी मुहम्मद तुगलक बहमनी। उसके बाद बहमनी राज्य की पांच शाखाएं हुईं और अहमद नगर की निजामशाहीं ने औरंगाबाद क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाया।

मलिक अवंर ने ही आम खास मैदान के पास की जागा मसजिद (अवंरी मसजिद) भडकल दरवाजा नवखंडा महाल आदि का निर्माण करवाया। मलिक की कब्र मेडिकल कालेज के प्रकोष्ठ में और उसकी बेगम की कब्र खुल्दाबाद में है। अहमद नगर की निजामशाही का अन्त बड़ी जल्दी हुआ (ई.स. १६३६)।

मुगल हुकूमत और औरंगाबाद

मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद शाहजहाँ के पुत्र औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार बन कर आया। तबसे कटक-खडकी का नाम परिवर्तित होकर औरंगाबाद हो गया। किन्तु कागजों में उसका जिक्र खुजिस्त बुनियाद — 'श्रेष्ठता की नींव' के रूप में होता था। औरंगजेब ने इस नगर में अनेक परिवर्तन किए। अपने स्वतः के रहने के लिए उसने वाले किला बाँधा और उस किले का नाम अरक रखा। ई.स. १६६२ में मराठों के भय के कारण उसने चार दीवारी बनवायी। इस चार दीवारी में दिल्ली दरवाजा, जालना दरवाजा, रोशन दरवाजा, पैठण दरवाजा, जफर दरवाजा, खिड़की दरवाजा, बारापुल दरवाजा, खिजरी दरवाजा, खादगर दरवाजा, मक्का दरवाजा, मदा दरवाजा, कुमार दरवाजा आदि दरवाजे हैं उन में से कई अब गिरा दिए गये हैं।

१६८३ से १७०७ ईसवी तक यह बादशाह दक्षिण में ही विराजमान रहा, उस समय औरंगाबाद उसकी राजधानी थी।

उसके अनेक सरदारों ने अपनी छावनियाँ औरंगाबाद में रखी थीं। औरंगाबाद का विस्तार हुआ और आबादी इस कारण बढ़ी। कर्णपुरा, जयसिंहपुरा, रणमस्तपुरा, शुभकर्णपुरा, केसरपुरा, नाम इन्हीं सरदारों की छावनियों पर से है। शाह मुसाफिर, शाहअली साहब नहरी, शाहनूर साहब, शाह निजामुद्दीन, सय्यदनूरजलहुदा, शाह अहमद गुजराथी, शाह फकरुद्दीन आदि संतों की समाधि औरंगाबाद में है।

निपट निरंजन औरंगाबाद के प्रसिद्ध योगी थे। उनकी रचनाएँ अपनी प्रखरता तथा आत्मप्रत्यय के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका निर्वाण १७४१ ईसवी में हुआ था।

औरंगाबाद के अन्य सूबेदारों ने भी औरंगाबाद के वैभव को बढ़ाने में अपना योग्य योगदान किया है। चौक की सुन्दर मसजिद शायस्ताखान ने बाँधी थी। शाहगंज की मसजिद सय्यद अली हसन ने बनवायी थी।

औरंगजेब बादशाह की पहली पत्नी दिलरास बानू बेगम उर्फ रबिया दीरानी का मकबरा औरंगाबाद की गुफाओं के करीब है। यह कब्र उसके लड़के आजमशाह ने बनवायी थी। इसका मकबरा करीब १५,००० वर्ग मीटर क्षेत्र में बना है। मुख्य इमारत में संगमरमर के पत्थर बेगम की कब्र के चारों ओर जड़े हैं। इस मकबरे की रचना ताजमहल के नमूने पर है।

औरंगाबाद विद्यापीठ के पास स्थित सोनेरी महल (स्वर्ण महल) बुंदेल राजा ने बनवाया था।

औरंगाबाद के साहित्यिक

यादवों के समय में हेमाड पंडित वीर देव जैसे प्रख्यात साहित्यकार और पंडित कटककटकी में निवास करते थे। शाह मुसाफिर सन्त की जो आज वर्तमान पाणचक्की है वह पुरानी पाठशाला थी। वहाँ पर बहुत बड़ा हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रहालय था। कवि शिराज (मृत्यु ११७७ हिजरी), बली औरंगावादी (मृत्यु १११६ हिजरी), सफी औरंगावादी (मृत्यु १३१० हिजरी) ये सब औरंगाबाद के प्रख्यात कवियों में से हैं। समर्थ रामदास स्वामी के श्लोकों को उर्दू में मन समझावन के नाम से रूपांतरित करने वाला कवि गहातुराव भी औरंगाबाद का वासिदा था।

उसकी कविता का उदाहरण देखिए :—

हवा हिंस गुस्से का संगीत करमत ।

कुबर होन कीने की कुछ बात कर मत ॥

आरे मन तू आया सवराम कर मत ।

हुदुदान तो बात वो घात कर मत ॥

आगरा जाते समय शिवाजी महाराज औरंगाबाद में रुके थे। इन्वतूता भी औरंगाबाद आया था। १६१३ में प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार ई. एम. फास्टर ने भी इस शहर का जिक्र अपनी डायरी में किया है। उसने यहां की इमारतों और उजाड़ बस्ती को देख कर कहा था 'Here endth india.'

आज का औरंगाबाद

१९५६ में महाराष्ट्र में मराठवाड़ा का विलीनीकरण हुआ और इसी वर्ष से इस क्षेत्र के आधुनिक विकास की शुरुआत हुई। १९५८ में औरंगाबाद में मराठवाड़ा विद्यापीठ की स्थापना पंडित जवाहर लाल नेहरू के करकमलों से हुई। आधुनिक शिक्षा के द्वार मराठवाड़ा क्षेत्र के लोगों के लिए खोल दिए गए। इस विद्यापीठ से क्षेत्र के ८२ महाविद्यालय संलग्न हैं। वैद्यकीय, अभियांत्रिकी शिक्षा इस क्षेत्र के युवकों में खुल गई। उन्हें अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देने के लिए एक नया आवाहन मिला। मराठवाड़ा विद्यापीठ में नाट्यशास्त्र, पत्रकारिता, ग्रन्थालय शास्त्र के भी पाठ्यक्रम में शिक्षा दी जाती है।

विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के बाद आगे क्या होगा इस प्रश्न को सुलझाने में मराठवाड़ा महाराष्ट्र में सबसे पिछड़ा भाग है। महाराष्ट्र का औद्योगिक विकास बम्बई, पुणे क्षेत्र में सीमित है। अतः औरंगाबाद शहर में औद्योगिक बसाहत स्थापित करने का कार्य शासन ने मुस्तैदी से किया।



वेद मन्दिर निर्माण यज्ञ में
आज हो अपनी आहुति भोजे

व्याख्यान वाचस्पति

—श्री पं० बिहारीलाल शास्त्री की लेखनी

हमारे ऋषि का वेदार्थ

वेदों पर अनेक विद्वानों ने भाष्य किये हैं। व्यंकट माधव, उद्गीथ, स्वामी आत्मानन्द, सायणाचार्य, उव्वटाचार्य, महीधराचार्य आदि ने, किन्तु इन सब ने वेदों के यज्ञ-क्रियाओं की सूची मात्र कहे जाने वाले सूत्र ग्रन्थों के पीछे चलाकर वेदों के अर्थ का अनर्थ कर डाला है। केवल ऋषि दयानन्द ही ऐसे हैं जिन्होंने वेदों को स्वतः प्रमाण मानकर श्रद्धापूर्वक व्याकरण, निरुक्त के आधार पर और अपने श्रद्धामगंभीर विचार पर अर्थ किए हैं। हमने इस तुलना में कई लेख छपाये हैं, अब नया लेख प्रस्तुत है—

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म ऽ एकादश च म ऽ एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पंचदश च मे पंचदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म ऽ एकविंशतिश्च म ऽ एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च म ऽ एकत्रिंशच्च म ऽ एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । यजु० । १८।२४ ।

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ यजु० ॥ १८।२५ ॥

अब उपरोक्त २४ वें मन्त्र पर उव्वटाचार्य का अर्थ देखिए— “अथैतान् यज्ञक्रतून् जुहोति” अर्थात् इन यज्ञ क्रतुओं को आहुतियाँ दे ।

अब महीधर का अर्थ देखिए—

‘अयुग्मस्तोमहोमार्था मन्त्राः’ (अयुग्म, स्तोम और ओ३म् के अर्थ वां मन्त्र)

‘अथायुजस्तोमान् जुहोति’ (१।३।२) इति श्रुतेः । एकमादाय द्वितीयां विहाय तृतीयामादाय चतुर्थं विहाय परित्यक्तसमसंख्याकेनात्तविषमसंख्याकेन मन्त्रेणायुग्मान्तोमाञ्जुहुयादित्यर्थः आदरातिशयद्योतानार्था सर्वत्र पुनरुक्तिः । अयुग्मस्तोमहोमैः सर्वकामावाप्तिः । तथाच श्रुतिः ‘एतद्वै देवाः सर्वान् कामानाप्त्वायुग्भिः स्तोमैः स्वर्गं लोकमायस्तथैतद्यजमानः सर्वान्कामानाप्त्वायुग्भिः स्तोमैः स्वर्गं लोकमेति’ (१।३।३।२) इत्यादि ।

श्रुति कहती है कि अयुग्म स्तोम होमों की आहुतियां दे । एक को देकर दूसरे को छोड़कर तीसरी आहुति दे । अर्थात् चौथा आदि सम संख्याओं को छोड़ कर विषम संख्याओं से आहुतियां लगावे । विषम संख्या के होमों से सर्वत्र काम की प्राप्ति होती है । इत्यादि अर्थ महीधर जी ने प्रकट किए हैं ।

प्रश्न होता है कि विषम से ही क्यों आहुति दी जाय ? तो इस का कोई कारण आचार्य जी ने प्रकट नहीं किया है । अब अगला २५ वां मन्त्र देखिए, और उस पर उब्वटाचार्य जी का भाष्य—

उब्वटः—युग्मतो जुहोति । चतस्रश्च मेऽष्टौ च म इति । पूर्वं पूर्वमुत्तरेण संवध्नाति । यथा वृक्षं रोहन्नुत्तरा शाखां समालम्भं रोहेत्तादृक् । द्वित्वख्याः प्रयोजनमाह श्रुतिः ॥ २५ ॥

महीधर का अर्थ :—एककण्डिकया युग्मस्तोमाञ्जुहोति । “अथ युग्मतो जुहोति चतस्रश्च म’ (१।३।३।४) इति । प्रथमं चतस्र इत्येता संख्यामादाय चतुरस्तरत्वेन स्थितान्युग्मान्तोमानष्टचत्वारिंशत्पर्यन्ताञ्जुहुयादित्यर्थः । तत्फलं स्वर्गप्राप्तिः । ‘एतद्वै छन्दांस्यब्रुवन्यातमाया या अयुजः स्तोमा युग्मभिर्वयं स्तोमैः स्वर्गं लोकमयामेति तथैतद्यजमानो युग्मभिः स्तोमैः स्वर्गं लोकमेति (१।३।३।५)’ इति श्रुतेः । पूर्वं पूर्वमुत्तरेण संवध्नाति वृक्षारोहणवत् तथाच श्रुतिः ‘पूर्वं पूर्वमुत्तरेणोत्तरेण संयुनक्ति यथा वृक्षं रोहन्नुत्तरामुत्तरां शाखां समालम्भयं रोहेत्तादृक्तत्’ (१।३।३।६) इति अब्रुक्ता संख्या संख्येयनिष्ठा । एते यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥

अर्थ :—वहां भी श्री आचार्य उब्वट और महीधर ने अपनी पिछली बात दोहरा दी कि विषम संख्या से हवन करें और श्रुति दे दी कि इससे स्वर्ग की प्राप्ति होगी । इन आचार्यों ने इन मन्त्रों में कोई विज्ञानयुक्त तथ्य नहीं देखा किन्तु ऋषि दयानन्द जी इसके शब्दार्थ करके फिर विज्ञानपूर्वक अर्थ निकालते हैं कि इन मन्त्रों में गणित विद्या का उपदेश है ।

हमें एक गणित के अध्यापक ने, हमारे सामने ही गणित कर करके बताया कि इसमें संख्याओं का वर्गमूल निकालना बताया गया है और उन्होंने निकाल कर

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
 दिखलाया। हम लेख बड़े जान के कारण वे सब प्रक्रियाएँ नहीं लिख रहे हैं। श्री
 दीनानाथ जी, राजपण्डित इन्दौर ने भी वेदों के मन्त्रों को लेकर गणित विद्या के
 सूत्र (Formulas) प्रकाशित कराये थे। अब वह पुस्तक प्राप्त नहीं है। और
 डाक्टर कुर्तकोटि शंकराचार्य जी ने भी इस पर पुस्तक लिखी और वेदों में सूत्र
 (गणित के) दिखाये जिनसे बहुत शीघ्र गणित के प्रश्न हल हो जाते थे। श्री पण्डित
 अयोध्याप्रसाद जी वी० ए० कलकत्ता वाले गणित के प्रश्नों के सरल हल के सूत्र
 व्याख्यानों में बताकर श्याम पट पर उन्हें दिखाया करते थे।

वेदों में विज्ञान है, गणित है, ज्योतिष है, आयुर्वेद है किन्तु कोई खोजने
 वाला हो। खेद है कि इन याज्ञिकों ने वेदों को सूत्रग्रन्थों के पीछे डालकर वेदों का
 महत्व घटा दिया और अभी तक भारतीय और पश्चिमी विद्वान् भी स्वामी दयानन्द
 का उपहास किया करते थे कि स्वामी जी वेदों में वैज्ञानिक बातों को बता रहे हैं।
 यह विशेषता है हमारे ऋषि के वेदार्थ में। अब पूर्वोक्त मन्त्रों पर हमारे ऋषि का
 भाष्य देखिए। २४वें मन्त्र का शब्दार्थ कर ऋषि द्वितीय पक्ष दिखाते हैं—

द्वितीय पक्ष :—(यज्ञेन) योग से विपरीत, दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत
 संगृहीत (च) और संख्या दो के वियोग अर्थात् अन्तर से (जैसे) (मे) मेरी
 (कल्पन्ताम्) समर्थ हों वैसे (मे) मेरी (त्रयस्त्रिंशत्) तैंतीस संख्या (च) दो के
 देने अर्थात् वियोग से (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) दो के वियोग से
 (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) फिर (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस
 (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (सप्तविंशति) सत्ताईस समर्थ हों, ऐसे सब
 संख्याओं में जानना चाहिए ॥ यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥

अब तृतीय—

(मे) मेरी (एक) एक संख्या (च) और (मे) मेरी (त्रिः) तीन
 संख्या (च) और (मे) मेरी (पञ्च) पाँच संख्या (च) परस्पर गुणित (मे)
 मेरी (पञ्च) पाँच संख्या (च) और (मे) मेरी (सप्त) सात संख्या (च)
 परस्पर गुणित (मे) मेरी (सप्त) सात संख्या (च) और (मे) मेरी
 (नव) नव संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (नव) नवसंख्या (च)
 और मेरी (एकादश) ग्यारह संख्या (च) परस्पर गुणित, इस प्रकार अन्य
 संख्या (यज्ञेन) उक्त वार वार योग अर्थात् गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों। यह
 गुणन विषय से तीसरा पक्ष है ॥ २४ ॥

भावार्थ :—

इन मन्त्र में (यज्ञेन) इस पद से जोड़ना-घटाना लिए जाते हैं,
 क्योंकि जो यज्ञ धातु का संगति-करण अर्थ है उससे संग कर देना
 अर्थात् किसी संख्या को किसी संख्या से योग कर देना वा धातु का जो दान
 अर्थ है उससे ऐसी सम्भावना करनी चाहिये, कि किसी संख्या का दान अर्थात् व्यय

करना, निकाल डालना यही अन्तर है । इस प्रकार गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भागजाति, प्रभागजाति आदि जो गणित के भेद हैं वे योग और अन्तर से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि किसी संख्या से एक बार मिला दें तो योग कहा जाता है जैसे $२ + ४ = ६$ अर्थात् २ में ४ जोड़ें तो ६ होते हैं। ऐसे यदि अनेक बार संख्या में संख्या जोड़ें तो उस को गुणन कहते हैं, जैसे $२ \times ४ = ८$ अर्थात् दो को चार से गुणा करें तो ८ होते हैं। ऐसे ही ४ को चौगुणा कर दिया तो ४ का वर्ग १६ हुए। ऐसे ही अन्तर से भाग, वर्गमूल, घनमूल आदि निष्पन्न होते हैं। अर्थात् किसी संख्या को जोड़ देने वा किसी प्रकारान्तर से घटा देना, इसी योग वा वियोग से बुद्धिमानों की यथामति कल्पना से व्यक्त, अव्यक्त अंकगणित और बीजगणित आदि समस्त गणित क्रिया उत्पन्न होती है, इस कारण इस मन्त्र में दो के योग से उत्तरोत्तर संख्या वा दो के वियोग से पूर्व-पूर्व संख्या अच्छे प्रकार दिखलाई है। वैसे गुणन का भी कुछ प्रकार दिखलाया है, यह जानना चाहिए ॥ २४ ॥

२५वें मन्त्र का द्वितीय पक्ष :—

(यज्ञेन) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (च) और संख्या चार चार के वियोग से जैसे (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों वैसे (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस (च) चाहिए, के वियोग से (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) चार के वियोग से (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) फिर (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) चार के वियोग से (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) चार के वियोग से (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस इस प्रकार सब संख्याओं में जानना चाहिए। यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥ २५ ॥

श्रव तृतीय पक्ष :—

(मे) मेरी (चतस्रः) चार संख्या (च) और (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) और (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) और (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) परस्पर गुणी, इस प्रकार संख्या आगे भी (यज्ञेन) उक्त बार बार गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों। यह गुणन विषय से तृतीय पक्ष है ॥ २५ ॥

भावार्थ :—

पिछले मन्त्र में एक संख्या को लेकर दो के योग-वियोग से विषम संख्या कहीं। इससे पूर्व मन्त्र में क्रम से आई हुई एक, दो और तीन संख्या को छोड़ इस मन्त्र में चार के योग वा वियोग से चौथी संख्या को लेकर सम संख्या प्रतिपादन की। इन दोनों मन्त्रों से विषम संख्या और सम संख्याओं का भेद जान के बुद्धि के अनुकूल कल्पना से सब गणित विद्या जाननी चाहिए।



‘विपत्ति’ नहीं, ‘प्रतिकूल परिस्थिति’

प्रियबन्धु ! तुम्हारा कथन है ‘बड़ी विपत्ति में फंसे हुए, क्या किया जाए ?’ मेरा परामर्श है कि सर्वप्रथम तुम स्वयं को एक आतंक से मुक्त करो। वह आतंक है विपत्ति शब्द का। बात को कुछ सहज करके समझने का प्रयास करो— वस्तुतः तुम विपत्ति में नहीं अपितु प्रतिकूल परिस्थिति में फंसे हो। जब शिकारी शूतुरमुर्ग पर आक्रमण करता है वह उसके लिए विपत्ति है। उस समय वह रेत में मुख छिपाकर आत्मसमर्पण कर देता है, जब कि सिंह का आक्रमण शिकारी के लिए प्रतिकूल परिस्थिति होता है, वह उसका प्रतिरोध प्राण पण सहित करता है और अपनी रक्षा करता है।

हमारा सबसे बड़ा सखा और सहचर है आशापूर्ण दृष्टिकोण। निराशावादी व्यक्ति की दृष्टि में आधा गिलास जल आधा खाली है, किन्तु आशावादी की दृष्टि में आधा भरा हुआ। यही तो दृष्टिकोण का अन्तर होता है।

हम तो एक समुज्ज्वल संस्कृति के प्रति आस्थावान् हैं, अतः हमें प्रतिकूल परिस्थिति का आधार मानना होगा कि हमें अवसर प्राप्त हुआ कि स्वयं को कसौटी पर परख सकें। अवसर प्राप्त हुआ तो धैर्यवानों में श्रीराम, सत्यवादियों में श्री हरिश्चन्द्र, दानियों में दधीचि तथा धनुर्वरों में वीरवर अर्जुन, अमर हो गए हैं। जब परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती हैं तो ही हमें हमारी अंतर्निहित, सुषुप्त शक्तियों का परिचय मिलता है। वही तो हमारा हमसे साक्षात्कार कराती है।

भाई मेरे ! स्मरण रखो, अनुकूल परिस्थिति में तो तिनका भी गंगाजी से महासागर तक पहुँच जाता है। जो अनुपयोगी है, अज्ञाना है वह तो तिरोहित हो जाता है, परन्तु वन्दनीय तो है वह शिलाखण्ड जो सतत प्रतिकूल प्रहारों में भी अडिग तो रहता ही है साथ ही लक्षावधि लोगों के लिए सेतु भी सिद्ध होता है।

मेरे बन्धु ! प्रतिकूल परिस्थिति से बड़ा हमारा अन्य कोई शिक्षक हो ही नहीं सकता। अनुकूलता की लोरी तो हमारे तेज, हमारे ओज को थपकी देकर सुषुप्त कर देती है, जब कि प्रतिकूलता का प्रहार हमारे सुप्त सर्वोत्तम को जगाता है।

प्रियवर !

क्या तुम भूल रहे हो कि देवदारु के सबल और स्पृहणीय वृक्ष कभी भी गमलों के रक्षाकवच में नहीं पनावा करते। वे प्रबल वर्षा, अंधड़ और तूफानों के आघातों को सहन करते हुए धरती पर अपनी पकड़ को सुदृढ़ बनाते हैं। छुरा सान पर चढ़ कर धार पर आता है तो हीरा तराशे जाने पर क्षुतिमान् होता है। अग्नि में तप कर ही तो सोना कुन्दन बनता है और रंग देती है हिना पत्थर पे घिस जाने के बाद। समय का प्रहार पड़ने से ही तो किसी प्रताप का वह पुण्य प्रताप उभरता है कि वह घर-घर में पुज जाता है। संघर्षों के प्रबल प्रभंजन में ही तो किसी शिवा को शिव स्वरूप प्राप्त होता है और फिर सारे जग में उसका जयगान गूँज उठता है।

जीवन का सबसे बड़ा पाठ पढ़ाती हैं, प्रतिकूलता की पाठशाला। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम शोकों में न वहें। अपितु अपनी समग्रशक्ति को संजो कर परिस्थितियों से जूझें, संघर्ष करें और साफल्यमंडित होकर उभरें।

अब भी तुम समझे कि नहीं मेरे प्रिय ! जल के गिलास को आधा खाली न मानो, अपितु उसे आधा भरा हुआ ही जानो, स्वयं के भीतर निहित सत्यम् शिवम् सुन्दरम् को जागृत करो और सिद्ध कर दो कि तुम तिनके नहीं अपितु वह सेतु हो कि जो दूसरों को भी पार उतारता है।



एक विचित्र संभ्रम की स्थिति में जी रहा है, आज का इंसान। मानसिक तनाव से संतुष्ट-मानव आत्मविस्मृति हेतु तथाकथित मनोरंजन के अनेकानेक साधन खोजने में व्यस्त है। अतीत की पीढ़ियों ने आत्म-स्मरण में स्वयं को लगाया, किन्तु उस कालखंड की तुलना में स्वयं को कहीं अधिक उन्नत जताने वाला आज का इंसान आत्म-विस्मरण का सुलभ पथ खोजने में रत है ! क्या है मूलकारण मानव की इस मनोदशा का ? इस प्रश्न को जब भी कभी विचारा तो एक ही उत्तर मिला और वह यह है कि आदर्श को यथार्थ के विरोध में लेना ही इस अवस्था का मूलकारण है। परन्तु यदि हम अपने मानस पटल पर पड़ी परतों को खोलें तो यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाएगा कि वास्तव में आदर्श यथार्थ के विरोध से ही प्रस्फुटित होता है। आदर्श यथार्थ का दुश्मन नहीं अपितु उसी की अन्तर्निहित संभावना है। जैसे बीज में ही वृक्ष छिपा रहता है उसी प्रकार आदर्श भी यथार्थ में ही अवगुंठित है। उसकी उपलब्धि का एक मात्र उपाय है यथार्थ का परिष्कार।

यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि यथार्थ और आदर्श के मध्य की विभाजन रेखा क्या है ? उत्तर यही दिया जा सकता है कि यथार्थ जुड़ा है, जीवन के सत्य से। जो अर्जित अथवा उपलब्ध है, वही है यथार्थ और अनुपलब्ध और अनर्जित जो कुछ है वह जिज्ञासा से उद्भूत होने के कारण तथा अपने विशिष्ट गुण का आभास देने के कारण अनुकरणीय है, अतएव आदर्श है। क्या इस तथ्य को नकारा जा सकेगा कि कीचड़ कमल का यथार्थ है। क्योंकि कमल का जन्म ही भाद्रपद सम्वत् २०३५

कीचड़ में होता है और उस कीचड़ की सम्पूर्ण उपलब्धि का रूप दर्शन आदर्श में कमल के रूप में ही हो जाता है। वास्तव में दोनों एक ही सत्य के दो रूप हैं और साथ ही एक दूसरे के पूरक भी। किन्तु एक-दूसरे के पूरक होने पर भी ये असंपृक्त भी तो हैं।

मानव मन की गहराइयों की थाह पाने वाला, जिसने उनकी आत्यन्तिक ऊंचाइयों को भी छुआ है, वह न तो आदर्श को अस्वाभाविक मानता है और न ही यथार्थ को निन्दनीय जताते हुए उसके दमन का ही परामर्श दे सकता है। ऐसे मन-शील जन की दृष्टि में तो जीवन के लिए दोनों ही आवश्यक हैं। क्योंकि यह भी तो एक परीक्षित सत्य है कि क्रोध में प्रकटित शक्ति ही परिवर्तित होकर दमा बन जाती है और घृणा का शक्ति-स्रोत ही प्रेम का मूल हो जाता है।

क्या हम इस तथ्य को सहज ही खुले नेत्रों से नहीं देख सकते कि घूरे पर पड़ी गंदगी ही जब खाद का रूप धारण कर लेती है तो सुमनों को सुगंधि प्रदान करने की शक्ति उसमें आ जाती है। इसी प्रकार मानव का यथार्थ भी रूपांतरित होकर आदर्श की सुवास बन सकता है, किन्तु आवश्यकता होती है इंसान के भीतर निहित आदर्श की सुप्त शक्ति को जगाने को।



मन्दिर कब बनता है ?

शस्त्रास्त्रों या कूटनीति के बल पर राज्य स्थापित किया जा सकता है, धन-सम्पन्नता के बल पर प्रासादों, महलों का निर्माण किया जा सकता है। शोधक बुद्धि आविष्कार और अनुसन्धान के नए प्रतिमान प्रस्तुत कर सकती है। विज्ञान की शक्ति के सहारे जल की प्रचंड और प्रबल धाराओं को रोककर उससे प्रचुर मात्रा में जल विद्युत का उत्पादन संभव है। तूलिका का धनी व्यक्ति किसी भी सजीव निर्जीव वस्तु का चित्र हूबहू निर्मित कर सकता है। ये सभी कार्य कठिन तो हो सकते हैं, किन्तु असंभव नहीं हैं।

जड़-बुद्धि भी यदा-कदा परिश्रम, संपर्क [और यथोचित मार्गदर्शन प्राप्त कर मेधावी के रूप में रंगमंच पर उभर सकता है। वह भी अपनी प्रतिमा से जगत् को चमत्कार कर सकता है। किन्तु मन्दिर का निर्माण तब तक असंभव है, जब तक कि पूर्वजों का पुण्य-प्रताप जागृत न हो। मन्दिर वही स्थापित कर पाता है जो इस सृष्टि के रचयिता की खोज में है। यह खोज वैभव की नहीं की जाती, किसकी की जाती है यह खोज? यह खोज अन्तरात्मा की की जाती है। अन्तरात्मा में बैठे शिव की तलाश की जाती है। शिव ही तो कल्याण है। अतएव मन्दिर का निर्माण कल्याण मार्ग के पथिक का रचनाक्रम है और इस रचनाक्रम में योगदान कल्याण कार्य में योगदान है। क्या हम कल्याण मार्ग के पथिक बन सकेंगे ?



कर्म और भोग

मनुष्य के स्वाभाविक रूप से दो गुण हैं। एक है ज्ञान और दूसरा प्रयत्न (कर्म)। दो प्रकार की ही इन्द्रियाँ हैं। जिनसे मानव अपने स्वाभाविक गुणों का प्रयोग करता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जिनसे मानव ज्ञान प्राप्त करता है और शेष पाँच हैं कर्मेन्द्रियाँ—जिनसे मानव कर्म करता है।

मनुष्य कर्मों का फल प्राप्त करता है और यह परमात्मा की व्यवस्था से प्राप्त होते हैं। कहा जाता है कि कर्म इसीलिए भोग से बड़ा है कि वह भोग की उपलब्धि में साधन रूपी कारण है। किन्तु हमें यह भी तो विचारना होगा कि क्या कर्म बिना भोग के ही बन गया या हो गया। भोग से परमात्मा की व्यवस्था में मनुष्य को जाति मिलती है, अर्थात् शरीर मिलता है, जिससे मनुष्य कर्म व भोग दोनों को ही करता है। मनुष्य को उस शरीर में कर्म से पहले भोग करना पड़ता है जो भोग रूपी कर्म द्वारा किया जाता है। उदाहरणतः बालक इतना छोटा है कि कर्म नहीं कर सकता अर्थात् किसी को हानि या लाभ नहीं पहुँचा सकता, परन्तु नैसर्गिक कर्म तो करता ही है, जैसे सांस लेना, आंख मींचना और खोलना, भोजन करना और दूध पीना आदि। ये सब भोग रूपी कर्म कहे जा सकते हैं। वह कुछ बड़ा होने पर भोग के अतिरिक्त कर्म भी करने लगता है। जैसे अपने भोजन में से दूसरे को भी खिला देता है और अपने खिलौने से दूसरे बालक को भी खेलने के लिए देकर उसे प्रसन्न करता है या दूसरे बालक की किसी वस्तु को छीनकर उसे परेशान करता है, ये सब भी कर्म बन जाते हैं। बालक का अपना खाना भोग था, खिलौने भोग थे। वही भोग दूसरे को खिलाकर साधनरूप कर्म का कारण बन गए। इस तरह भोग से मनुष्य को जन्म (शरीर) मिला। इस शरीर का उपयोग करने के लिए शक्ति मिली, धन मिला और अनेक वस्तुएं भोग को मिलीं। ये सभी भोग हैं, इसी भोग में मनुष्य कर्म करता है। मनुष्य में शक्ति न हो

तो किसी की सहायता नहीं कर सकता। यदि धन न हो तो दान व यज्ञ आदि शुभ कर्म नहीं कर सकता। शरीर न हो तो कुछ हो ही नहीं सकता। जिससे स्पष्ट हुआ कि भोग ही कर्म कराता है। जिस प्रकार कर्म भोग का कारण है, उसी प्रकार भोग कर्म का कारण है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भोग की अवहेलना नहीं की जा सकती अथवा नहीं की जानी चाहिए।

दर्शन का भी कथन है “क्लेश मूलः कर्माशयः” क्लेश कर्म का मूल है। “राग व द्वेष” दोनों ही क्लेश हैं। दोनों ही कर्म का मूल हैं, कारण है। यदि संसार को मोक्ष का राग न हो तो क्या कोई सांसारिक या मुमुक्षु कुछ कर्म करेगा? कदापि नहीं। डाकू को दूसरों का माल लूटने या किसी की हत्या करने में प्रवृत्ति तभी होती है जब अविद्या के वशीभूत उसमें विभिन्न वस्तुओं से मिलने वाले सुख का राग होता है।

संसार का प्रत्येक प्राणी भोग के कारण ही पाप व पुण्य करता है, अर्थात् कर्म करता है। अतएव भोग भोगो परन्तु वेद की आज्ञानुसार “तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः” भोग पर ही सारा कर्म निर्भर करता है। मनुष्य संसार में कर्म करता है, भोग प्राप्त करने के लिए ही, फिर वह चाहे सेवक हो या अधिकारी। सभी अपने भोग की प्राप्ति हेतु कार्य करते हैं। व्यापारी के व्यापार करने का आधार भी यही है तो किसान की खेती करने की प्रेरणा का स्रोत भी यही। यहां तक कि चोर द्वारा की जाने वाली चोरी और उपदेशक द्वारा किए जाने वाले उपदेश के लिए भी प्रेरक यह भोग की प्राप्ति ही है। दूसरा पग जो मनुष्य उठाता है वह है भोग भोगने का। किसी वस्तु को प्राप्त करके ही उसका भोग किया जा सकता है। जिस प्रकार मनुष्य भोग की प्राप्ति हेतु पाप व पुण्य करता है अर्थात् झूठ, मक्कारी तथा असत्य बोलकर भी धन प्राप्त करता है उसी प्रकार भोग के भोगमें में भी पाप, पुण्य करता है। उदाहरणतः—एक रिक्शा चालक दिन-भर का कठोर परिश्रम करके बीस रुपये कमाता है तो और भोग भोगने के लिए शराब की दुकान पर जाता है, या सिनेमागृह में जाता है। वहां स्वयं शराब पीता है या अपने मित्रों को पिलाता है अथवा अपने मित्रों के साथ फिल्म देखने में अपने द्वारा अर्जित धन लगाता है तो करता तो भोग ही है। यद्यपि यह है पाप कर्म ही। यह भोग उसके जीवन के लिए अच्छा न होगा। क्योंकि यदि वह इस कमाई से अपने परिवार के लोगों का पोषण करता अथवा किसी अपंग को भोजन कराता या उसकी किसी अन्य

आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपने द्वारा उपार्जित राशि लगाता तो पुण्य का भागी हो जाता। यही जीव का तीसरा पग है कि भोग को इस प्रकार भोगे कि उसका भोग अपने लिए भोग बने और दूसरों के मार्ग में कर्म का साधन बने जो तीसरे भावी जीवन के लिए कर्म बन जाए। उदाहरणतः मोहन बीमार हो गया। और वह भी इतना कि उसे अस्पताल में दाखिल होना पड़ा। उसके एक मित्र राम को ज्ञात हुआ कि मेरा मित्र बीमार होकर अस्पताल में है तो राम भी तुरन्त समाचार पाते ही अस्पताल पहुंचा। मोहन ने कुछ कार्य बताया। राम ने उसके लिए किया और लगातार एक सप्ताह नित्य नियम से सेवा करता रहा। मोहन स्वस्थ हो गया। घर लौट आया। अतः आप विचार कीजिए कि राम ने कष्ट उठाया। क्या उसे बिना किसी कर्म (कारण) के कष्ट हुआ और उसका धन व्यय हुआ। उसके पूर्व जन्म के कर्म का यह फल था। जो कष्ट हुआ वह इस जन्म में भोग की रीति थी कि उसने अपने भोग का किस प्रकार भोग किया। जिससे उसका अपना पाप भी समाप्त हो गया और मोहन का रोग जो पाप का परिणाम था वह भी टला और राम का भविष्य के लिए कर्म हो गया, जो उत्तम फल प्रदान करेगा। राम की सेवा और समय तथा धन का उपयोग बेकार नहीं जाएगा। अतः स्पष्ट हो जाता है कि भोग क्या है? संसार में मनुष्य यही तीन काम करता है। १—भोग की प्राप्ति, २—भोग का भोगना—वह भी ऐसे कि जिससे किसी अन्य को लाभ हो। जो मनुष्य इस प्रकार भोग प्राप्त करता है वह अपने भावी जीवन के लिए कर्म भी बनाता है। जो भोग कर्म का रचयिता है, वह अवहेलना की वस्तु नहीं। कर्म पर जितनी दृष्टि रखी जाती है, उससे कम भोग पर भी नहीं रखनी चाहिए। एक रोचक तथ्य यह भी है कि भोग ही कर्म पैदा करता है और भोग ही कर्म को समाप्त करता है। परमात्मा मनुष्य के शरीर त्याग के दिन संचित कर्मों से ही कर्मों का प्रारब्ध बनाकर आत्मा को देता है, जो जाति, आयु और भोग के रूप में होते हैं। अतः भोग भी कर्म के समय ही आवश्यक है।



वेद सन्धिर निर्माण हेतु १) भेजें या अधिक
पर आज ही भेजें अवश्य —ग्रन्थक्ष

धर्मवीर की प्रतिज्ञा

[धर्मवीर पं० लेखराम जी का मिर्जा साहब के धमकी भरे पत्र का उत्तर]
(काव्यानुवादक - डा० सूर्यदेव शर्मा, साहित्यालंकार, एम. ए. अजमेर)

(१)

पावन वैदिक धर्म हमारा, उसे कदापि न छोड़ूंगा ।
किसी प्रलोभन या धमकी से, उससे ना मुख मोड़ूंगा ॥
कत्ल करो या मुझे जला दो, या विपदा का वज्र गिरे ।
वेद धर्म के पावन पथ से, फिर भी मेरा पग न फिरे ॥

(२)

दृढ़ विश्वास धर्म में मेरा, चाहे सब परिवार छुटे ।
धन दौलत चाहे सब जाये, चाहे सब घरवार लुटे ॥
कौन शक्ति है भूतल पर, जो धर्म-प्रचार छुड़ायेगी ?
एक परम प्रभु में श्रद्धा ही, आगे मुझे बढ़ायेगी ॥

(३)

असत मतों को मिटा, ढोंग की ढोल-पोल मैं खोलूंगा ।
वातिल परस्तियों से लड़कर, सदा सत्य ही बोलूंगा ॥
अमर आत्मा है मेरी, ईश्वर में दृढ़ विश्वास अटल ।
ईश्वर वेद धर्म से अंकित है, मेरा यह हृदय पटल ॥

(४)

कत्ल की धमकी क्या देते हो, मिर्जा जी कुछ होश करो ।
आर्यवीर हैं कभी न डरते, बात ये अपने हृदय धरो ॥
लेखन कार्य रुके नहीं मेरा, निस दिन धर्म प्रचार करूं ।
धर्मन्धिता हटा के जग में, वैदिक "सूर्य" प्रकाश करूं ॥



— आलोक

स्वतन्त्रता-दिवस और हम

आज स्वतन्त्रता-दिवस है। यही वह दिन है जब देश की आजादी के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ाने वालों और कालापानी एवम् अन्य स्थानों पर कारागारों की काल कोठरियों में अपनी जवानी गलाने वाले देशभक्तों का बलिदान रंग लाया था। देव दयानन्द ने स्वतन्त्रता का जो जयघोष किया था, लोकमान्य “तिलक ने स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है” का जो नारा लगाया था वह उस दिन एक सीमा तक पूरा हुआ था। एक सीमा तक इसलिए कि भारत को आजादी तो मिली किन्तु भारत का विभाजन भी हो गया था। चतुर फिरंगी की चाल में देश के नेता फंस गए थे। अतः खंडित भारत ने ही स्वराज्य पाया।

अब प्रतिवर्ष १५ अगस्त को सारे देश में स्वतन्त्रता-दिवस मनाया जाता है। प्रधानमंत्री द्वारा दिल्ली के लाल किले पर राष्ट्रध्वज फहराया जाता है। अनेक समारोह भी उस दिवस आयोजित किए जाते हैं। हम इन समारोह को मनाएं—देश की आजादी पर खुशियां मनाएं—यह सब तो आवश्यक है ही किन्तु उसके साथ यह भी आवश्यक है कि हम उस अवसर पर उन महान् आर्य क्रान्तिकारियों और हुतात्माओं की भी याद कर उनके जीवन से प्रेरणा लेने का संकल्प ग्रहण करें। जिन्होंने अपनी देह को दीपक और प्राणों को बत्ती जलाकर आजादी की आरती उतारी थी।

लोकमान्य तिलक, अनन्त कान्हेरे, वासुदेव बलदेव, फडके, स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, देवता स्वरूप भाई परमानन्द, वीरवर भगतसिंह, राम प्रसाद बिस्मिल और अशफाक तथा देश गौरव नेता जी सुभाष तथा अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे ही प्रेरणा-पुरुषों में शामिल है जिन्होंने भारत माता के प्रति यही भावना रखकर स्वतन्त्रता-संघर्ष में भाग लिया था कि:

तेरा वैभव अमर रहे मां।

हम दिन चार रहें न रहें ॥

अब हम स्वतन्त्र हैं, किन्तु हमारी आजादी के लिए अभी भी अनेक खतरे हैं। विदेशी भाषा और वेशभूषा से सप्रेम तथा अपनी सभ्यता एवम् संस्कृति के प्रति उपेक्षा की भावना बरतना भी उन्हीं खतरों में शामिल है। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि—

जिसको न निज भाषा तथा निज धर्म पर अभिमान है वह नर नहीं है पशु निरा और मृतक समान है।

हम आज के दिन संकल्प ग्रहण करें कि हम आपसी बातचीत में सदैव अपनी भाषा का ही प्रयोग करेंगे और वेशभूषा भी अपने ही देश की अपनायेंगे। क्योंकि किसी भी देश की वास्तविक आजादी का मापदण्ड यही है कि वह भाषा, सभ्यता, चिन्तन और जीवनयापन में कितना अपनापन लिए है।

जो जाति या राष्ट्र अपने पूर्वजों और शहीदों को भूल जाती है अपनी भाषा और सभ्यता तथा संस्कृति को भूल जाती है, वह वास्तविक तौर पर दास ही रह जाती है।

आओ संकल्प ग्रहण करें कि आज से हम अपनी ही वेशभूषा अपनायेंगे, अपनी ही भाषा को अपने व्यवहार में लाएंगे और अपने पूर्वजों द्वारा दर्शाया गया त्याग तपस्या और बलिदान का पथ अपना कर भारत के जन-जन के लिए सुख का सामान जुटावेंगे तथा देश को महान् बनायेंगे।

आप भी हंसिए

“क्या आप की बचपन की कोई इच्छा पूर्ण हुई है?”

“जी हाँ! बचपन में जब मां मेरे बाल जोर-जोर से काढ़ती थीं तो मैं कहता था—काश, मैं गंजा हुआ होता!”

○ ○ ○

“क्या आप बता सकते हैं कि नया टोला स्ट्रीट किधर है?”

क्या कहा आप ने? मैं जरा ऊंचा सुनता हूँ।”

“माफ कीजियेगा। मैं सुन नहीं पाया।”

“मैं ने कहा था कि मैं जरा सा ऊंचा सुनता हूँ।”

“अरे मैं भी ऊंचा सुनता हूँ।”

“तब तो बहुत बुरा हुआ। खैर आप चाहते क्या हैं।”

“कृपया यह बताएं कि नया टोला स्ट्रीट किधर है।”

“जरूर-जरूर आप १० मकानों के बाद बायें मुड़ जायें।”

“तो क्या यही नया टोला स्ट्रीट है?”

“जी नहीं। मैं समझा आप नया टोला स्ट्रीट पूछ रहे हैं।”

“अरे नहीं नाहब, मैं तो नया टोला स्ट्रीट पूछ रहा हूँ।”

“तो माफ करें, मुझे मालूम नहीं।”

तपस्वी कौन ?

महाराजा यक्षी अपने धैर्य और शालीनता के लिए प्रसिद्ध थे। राजा होते हुए भी उनमें तपस्वी के गुण थे।

एक बार कुछ ऋषि एक जगह एकत्रित हुए। तभी अंगिरा के शिष्य वैवर्त ने कहा—“राजा तपस्वियों में श्रेष्ठ कैसे हो सकते हैं? क्षमा तपस्वियों का महान् गुण है। मैं राजा यक्षी को तपस्वियों से बड़ा नहीं मान सकता।” यह कह कर वह यक्षी की परीक्षा लेने चल दिये।

महाराजा ने उन्हें यज्ञशाला में ठहराया। उचित सम्मान-सत्कार किया। वैवर्त ने कहा—“एक सप्ताह तक मुझसे उपदेश ग्रहण करो।”

महाराजा प्रतिदिन महारानी के साथ यज्ञशाला में जाते, उपदेश सुनते। मगर वैवर्त उपदेश देते समय राजा को अपशब्द भी कहते जाते।

.....अपशब्दों को सुनकर भी महाराजा मौन रहते। हुआ यह कि

स्वयं वैवर्त का धैर्य डोलने लगा। आखिर उन्होंने एक युक्ति सोची। राजा से कहा—“कल मैं आपका नगर देखूंगा। लेकिन मेरे रथ को घोड़ों के बदले आप और महारानी खींचेंगे।”

“यह हमारा सौभाग्य ही होगा।”
—महाराजा ने धैर्य सहित उत्तर दिया।

दूसरे दिन रथ आया। अश्वों के स्थान पर महाराजा व महारानी रथ में जुत गये। वैवर्त रथ में बैठे थे। रथ बाजार में आया, तो देखने वाले क्रोध से तमतमा उठे, वे तपस्वी पर पत्थर बरसाने लगे। किन्तु महाराजा तपस्वी को वचाने का बराबर प्रयास करते रहे और इसी प्रयास में स्वयं लहलुहान हो गए।

यह धैर्य की पराकाष्ठा थी। तपस्वी रथ से कूद पड़े और महाराजा के चरण स्पर्श कर उन्होंने कहा “तपस्वी मैं नहीं अपितु आप ही हैं। मुझ में तो तपस्या का दम्भ ही भरा हुआ है।

—निरंजन

युवकों से

ओ युवको, बड़े चलो आगे
मैदान तुम्हें सर करना है,
निज मातृ-भूमि-रक्षा-हित ही
वीरो जीना है मरना है।
तुम कर्मवीर बन कर विचरो,
'बलिदान' तुम्हारा जीवन हो,
तप त्याग-तेज-गुण-गौरव बल,
'प्रण-पालन' ही अक्षय धन हो।
दुःखों का दर्प दवा कर जब

सुख-शान्ति-सुधा बरसाओगे,
तब ही जनता के मित्र, भक्त, प्रिय,
सद सेवक कहलाओगे।
तुम से सब को आशा है
अभिलाषा है,—कल्याण करो,
इस मरती मानवता को अब,
नव प्राण-दान दे, त्राण करो।

—स्व० श्री पं० हरिशंकर शर्मा

आप भी हंसिए

माली (बाग में घूमते लड़के से) — क्या तुम आमों को तोड़ने की फिराक में हो ?

लड़का — मैं कोशिश तो यही कर रहा हूँ कि तोड़ने न पड़ें ।

मित्र — क्या तुम्हारी 'साहस के कारनामे' नामक पुस्तक पूरी हो गई ?

लेखक — पुस्तक तो पूरी हो गई, लेकिन मैं उसे किसी प्रकाशक तक ले जाने का साहस नहीं जुटा पा रहा हूँ ।

शिक्षक — क्यों गिरीश ! यह निबंध जां तुम घर से लिखकर लाए हो, क्या तुमने ही लिखा है ?

गिरीश — जी हां, निबंध तो मैंने ही लिखा है, लेकिन इसमें गलतियां पिता जी ने की हैं ।

ग्राहक — श्रीमान् आपके हाथी दांत के गहने तो सारे ही बनावटी निकले !

दुकानदार — जी, गहने तो असली थे । लगता है कि हाथी के दांत ही बनावटी रहे हों ।

एक मित्र — (होटल में) "मैं संसार का प्रत्येक कार्य कर सकता हूँ" ।

दूसरा मित्र — बहुत अच्छा; पर मैं तो तब मानूंगा जब तुम होटल का बिल चुका दोगे ।

मंत्री (सचिव से) जिस शब्द के आगे बान लगा रहता है, प्रायः उस नाम वाले आदमी बड़े दुष्ट होते हैं । जैसे गाड़ीवान, दरबान...

सचिव — जी हां, मेहरबान ।

दीपक — वह बहुत बड़ा चित्रकार है । उसने ब्रुश का इशारा किया । हंसते हुए बालक का चित्र, रोते हुए बालक में बदल गया ।

पंकज — यह कोई बड़ी बात नहीं । ऐसा तो मेरी मां झाड़ू से ही कर देती है ।

नन्हें सुन्नो करो तो ध्यान तनिक बढ़ाओ अपना ज्ञान

सब से अधिक जनसंख्या वाला प्रदेश	— उत्तर प्रदेश
„ „ „ गहन आवादी वाला प्रदेश	— केरल
„ „ „ क्षेत्रफल वाला प्रदेश	— मध्य प्रदेश
„ „ „ शहरी आवादी वाला प्रदेश	— महाराष्ट्र
„ „ „ प्रति व्यक्ति आय वाला प्रदेश	— पंजाब
„ „ „ साक्षरता वाला प्रदेश	— केरल
सब से कम साक्षरता वाला प्रदेश	— जम्मू-कश्मीर
सब से कम प्रति व्यक्ति आय वाला प्रदेश	— उड़ीसा
सब से कम क्षेत्रफल वाला प्रदेश	— त्रिपुरा
	— प्रवीन कुमार

मुड़ते सींग : झड़ते सींग

सुना है कभी आपने—हम बिना आपका उत्तर सुने ही कह देते हैं कि आपने यह वाक्य किसी न किसी को कहते हुए अवश्य ही सुना होगा—वह ऐसा गया कि जैसे गधे के सिर से सींग । और यह भी आप जानते ही हैं कि वैशाखनन्दन जी के सिर पर सींग नहीं होते । जिसके सिर पर होते ही नहीं, उसकी बात ही क्या करें, किन्तु यह भी एक विचित्र सत्य है कि एक पशु ऐसा भी है कि जिसके सिर पर सींग उगते भी हैं और बढ़ते तो हैं ही, साथ ही झड़ते भी हैं ।

यह पशु है विंग हार्न रैम अर्थात् बड़े सींग वाला मेंढा । उसके सींग उस समय उगने आरम्भ होते हैं कि जब वह लगभग आठ सप्ताह का हो जाता है । पहले वर्ष में उसके सींग बड़ी तेजी के साथ बढ़ते हैं, किन्तु बाद में इनकी वृद्धि की दर घटती जाती है । जब उसके सींग लम्बे हो जाते हैं तो घूमने लग जाते हैं । आप शायद विश्वास न करें किन्तु यह सच्चाई है कि कई ऐसे पारखी भी हैं कि जो सींगों के इस घुमाव से ही मेढ़े की आयु का भी पता लगा लेते हैं ।

तो यह तो चर्चा हुई घूमने वाले सींगों की । और ये सींग स्थायी होते हैं और जीवन की आखिरी घड़ी तक ये बेचारे पशु का साथ देते हैं । उसके शरीर पर बने रहते हैं । पर इसके विपरीत कुछ अन्य पशु ऐसे भी हैं कि जिनके सींग एक विशेष मौसम में उगते हैं और दूसरा उगते ही झड़ जाते हैं अर्थात् गिर जाते हैं ।



कछुआ और गीदड़

एक कछुआ था । वह एक जंगल में जा रहा था एक गीदड़ ने उसको देखकर खाने की सोची ।

गीदड़ ने कछुए पर दांत मारने शुरू किए मगर कछुआ किसी तरह भी बस में नहीं आया । कछुवे ने सोचा कि मैं इसके बस में तो नहीं आ सकूंगा मगर यह मुझे दिक कर डालेगा । उसने कुछ सोच कर गीदड़ से कहा कि मैं आपको नर्म करने की तरकीब बतलाता हूं तुम मुझे किसी तालाब में ले जाकर भिगो लो जब मैं नर्म हो जाऊं तब खा लेना

कछुवे की बात गीदड़ को अच्छी लगी ।

गीदड़ ने कछुवे को एक तालाब में ले जाकर छोड़ दिया और नर्म होने की बात देखने लगा ।

कछुवे ने डुबकी लगाई और दूर जा निकला । गीदड़ बोला अब तो नर्म हो गये होंगे अब आओ ।

कछुआ बोला हवा खाओ । गीदड़ अपना सा मुंह लेकर चला गया । बालको ! मुसीबत में धवराओ नहीं, कछुवे की तरह कोई तरकीब सोच लो ।

—रघुवीर शरण त्यागी

प्राणों की भेंट

दिल्ली में केन्द्रीय धारा सभा की बैठक चल रही थी। धारा सभा की यह बैठक बहुत ही महत्वपूर्ण थी। सभा में सरकार की ओर से दो विधेयक पेश किए गये थे। अधिनियम का स्वरूप-ग्रहण करने के लिये। उनमें से पहला था—“पब्लिक सेफ्टी बिल” तथा दूसरा था, “ट्रेड डिस्प्यूट बिल”। इन दोनों विधेयकों के पीछे ब्रिटिश हुकूमत का छलपूर्ण विद्वेपात्मक उद्देश्य था। “जनता की सुरक्षा का विधेयक” इसलिए पास कराया जा रहा था, जिससे जनता के मौलिक अधिकारों को समाप्त किया जा सके। कितनी बड़ी चालाकी? जनता की सुरक्षा का कानून बनाकर जनता को शक्ति-विहीन करने का छल। दूसरा बिल अर्थात् “ट्रेड डिस्प्यूट बिल” इसलिए पास कराया जा रहा था, जिससे देश में उठने वाले मजदूर आन्दोलनों को कुचला जा सके। मजदूर अपना सिर न उठा सकें। पूंजीपति तथा सरकार उनका खून चूसती रहे। कितनी बड़ी विडम्बना? कहने के लिए मजदूरों का पोषक “ट्रेड डिस्प्यूट बिल”, पर मजदूरों को कुचलने का हथियार। दोनों ही विधेयक भारत की मर्यादा पर कलंक थे। कई दिनों से विधेयकों पर बहस चल रही थी। धारा-सभा के भारतीय सदस्य पूरी शक्ति से विधेयक का विरोध कर रहे थे। लेकिन ब्रिटिश सरकार उस विरोध की परवाह न करते हुए विधेयकों को पास करने पर तुली थी। इतना तो निश्चित था कि धारा-सभा में यह विधेयक पास नहीं हो सकते थे। क्योंकि समस्त भारतीय सदस्य एक आवाज से उसका विरोध कर रहे थे, जिसमें पंडित मोतीलाल नेहरू तथा मालवीय जी आदि प्रमुख राष्ट्रीय नेता भी शामिल थे। सरकार को भी यह बात मालूम हो गयी थी, लेकिन बिल का पास होना भी उसके लिए आवश्यक था, क्योंकि यह बिल भारतीयों पर अत्याचार करने के सुगम शस्त्र थे। अतः ब्रिटिश सरकार ने तय कर लिया था कि यदि धारा-सभा में इन विधेयकों को पास नहीं किया गया तो वायसराय के विशेषाधिकार के अधीन ही इन्हें लागू कर दिया जाएगा। कितना बड़ा अन्याय था! अत्याचार को

भारतीयों पर थोपने की कितनी जवदस्त भावना थी ! लेकिन शायद ब्रिटिश सरकार अभी भी भारतीय नौजवानों के साहस तथा शौर्य से अनभिज्ञ ही थी, नहीं तो इतना बड़ा दुस्साहस वह न करती ।

८ अप्रैल सन् १९२९ ई० । भारतीय सदस्यों के विरोध को सरकार ने अनसुना कर दिया । कई दिनों की बहस के उपरान्त भी कोई हल न निकला । उन दिनों धारा-सभा के सुयोग्य अध्यक्ष श्री विठ्ठल भाई पटेल थे । आज "ट्रेड डिस्प्यूट विल" पर मतदान होना था । सभी सदस्यों तथा धारा-सभा में आज निस्तब्धता छाई हुई थी । सदस्यों की मनो-भावनाओं का अनुमान लगाना दुष्कर था ।

थोड़ी ही देर में धारा-सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई । मतदान की योजना पहले से ही सभी को मालूम थी । अध्यक्ष महोदय ने अपना आसन ग्रहण कर लिया था । आज की कार्यवाही का अवलोकन सदस्यगण बड़े ही उत्सुक भाव से कर रहे थे ।

घड़ी ने ११ बजाए । प्रतीक्षित मतदान का समय आ गया । टन टन टन टन अध्यक्ष महोदय ने घंटी बजायी— विधेयक के पक्ष तथा विपक्ष में सदस्यों को अलग हो जाने के लिए । घंटी की आवाज भी शायद पूरी न हो सकी थी कि धारा-सभा में एक भयानक धमाका गूँज उठा । तूफान मच गया । कंपकंपी फैल गयी । भगदड़ मच गयी । कोई कुर्सी के नीचे, कोई मेज के नीचे । कई अंग्रेज सदस्य तो बेहोश हो गये । कुछ भयाकुल हो चीखने लगे । तहलका मच गया । बम का भयानक विस्फोट था । भारतीय सदस्य अपने-अपने स्थानों पर अविचल डटे रहे । एक तरफ धारा-सभा के अन्दर चीख-पुकार दूसरी ओर दर्शक-दीर्घा से पर्चों की वौछार । विस्फोट से निकला धुँआ सभाकक्ष को आवृत्त किए था । कुछ ही क्षणों में धारा-सभा "इन्कलाब" के नारों से गूँज उठी । धुँआ कुछ-कुछ साफ होने पर सदस्यों ने देखा— दर्शक दीर्घा में दो नवयुवक अविचल खड़े मुस्करा रहे हैं ।

(२)

भारत परतन्त्र था । चारों ओर अंग्रेजी अत्याचारों ने कुहराम मचा रखा था, जिसके विरुद्ध भारतीय जनता कांग्रेस के नेतृत्व में तथा कांग्रेस गांधी जी के नेतृत्व में संघर्ष कर रही थी । भारतीय स्वाधीनता-संग्राम अविराम आगे बढ़ रहा था । गांधी जी ने सत्याग्रह तथा सविनय

अवज्ञा-आन्दोलन की निष्फलता के उपरान्त असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया था। पहले तो इस आन्दोलन ने सारे देश में चेतना की लहर फैला दी थी लेकिन बाद में धीरे-धीरे यह आन्दोलन निष्क्रिय हो गया। इस आन्दोलन के मन्द पड़ जाने से अंग्रेजों ने मनमाने कार्य करने प्रारम्भ कर दिये। सन् १९२८ ई० में साइमन साहब की अध्यक्षता में भारत में एक आयोग आया जिसका कार्य भारतीयों को औपनिवेशिक स्वशासन की मांग की जांच करना था। इस आयोग में कोई भारतीय सदस्य नहीं था, जिसकी वजह से भारतीयों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया। समस्त देश में जहां कहीं भी साइमन कमीशन गया, उसका जोरदार विरोध किया गया। “साइमन कमीशन वापस जाओ” “भारत भारतीयों के लिये है।” नारों तथा काले झण्डों के प्रदर्शन द्वारा भारतीयों ने विरोध प्रकट किया।

३० अक्टूबर १९२९ ई०। लाहौर के ऐतिहासिक नगर में साइमन कमीशन का विरोध करते हुए जुलूस का नेतृत्व पंजाब केसरी लाला लाजपत राय कर रहे थे। जुलूस को पुलिस ने रोका। लेकिन आजादी के मतवालों को आगे बढ़ने से रोकना हंसी-खेल नहीं। पुलिस को लाठी-चार्ज करना पड़ा। फलस्वरूप लाला लाजपतराय के सिर में लाठियों की चोट लग जाने से एक मास बाद उनकी मृत्यु हो गयी। सारे देश में शोक छा गया। नव-जवानों का खून खौल उठा। भगतसिंह आजाद सरीखे क्रान्तिकारियों के हृदय में राष्ट्र के इस अपमान का बदला लेने की विकट भावना जागृत हो उठी।

भगतसिंह अपने दो अभिन्न साथियों—राजगुरु तथा सुखदेव के साथ लाहौर पहुंचे। लाला जी के जुलूस पर लाठी-चार्ज का आर्डर देने वाले डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट सान्डर्स को अपनी गोली का अचूक निशाना बना दिया। सारे देश में खुशी की लहर दौड़ गयी। भगतसिंह अपने साथियों सहित फरार हो गए। सरकार ने एड़ी से चोटी तक का जोर लगाया। लेकिन व्यर्थ। क्रान्तिकारी पकड़े न जा सके। लाला जी की मृत्यु का बदला लेने से भारतीयों को गौरव का अनुभव हुआ। भगतसिंह इस कृत्य के कारण समस्त भारतीय जनता की आंखों के तारे बन गये। नवजवानों में नव-स्फूर्ति, नव-शक्ति तथा नूतन जोश का संचार हुआ। क्रान्तिकारियों को नयी दिशा प्राप्त हुई।

स्वाधीनता की क्रान्ति-शिखा जोरों से प्रदीप्त हो उठी। लाहौर

पड़यन्त्र केस तथा अन्य कई मामलों में भगतसिंह को उत्तरदायी ठहराया गया। लेकिन समस्त शक्ति लगा देने पर भी सरकार उन्हें पकड़ न सकी।

थोड़े ही दिनों में केन्द्रीय धारा-सभा में भारत विरोधी दो बिल पेश किए गए जिससे भारत का जनमानस क्षुब्ध हो उठा। नवजवानों में कुछ कर डालने की तमन्ना जागृत हुई। क्रान्तिकारियों ने तय किया कि यदि सरकार इस बिल को पेश करने से वाज नहीं आती तो धारा-सभा में बम फेंका जाय। सभी क्रान्तिकारी इस विचार से सहमत हो गए। भगतसिंह ने प्रस्तावना का जोरदार समर्थन करते हुए कहा—“सरकार बहरी है। वह हमारी आवाज को सुन नहीं सकती। उसे भारत की आवाज सुनाने के लिए आवश्यक है कि धारा-सभा में बम फेंका जाय। लेकिन इतने से हो काम बनने का नहीं। स्वतन्त्रता केवल बम फेंकने से नहीं मिलेगी। आज हमारी स्वतन्त्रता “प्राणों की भेंट” मांग रही है। क्रान्ति-यज्ञ-शिखा में नवजवानों को अपनी आहुति चढ़ानी होगी।

“आहुति सर्वप्रथम मैं चढ़ाऊंगा” राजगुरु ने कहा। नहीं। नहीं। “सर्वप्रथम मैं अपनी आहुति चढ़ाऊंगा”। सुखदेव तुरन्त बोल पड़े।

“नहीं। यह अवसर मुझे मिलना चाहिए”। आप लोगों ने लालाजी की मृत्यु का बदला लिया। मैं। बटुकेश्वर दत्त ने कहा—“आप सभी माँ के सच्चे सपूत हैं बलिदान की भावना आपकी पद सेविका है। हम सभी को अपनी-अपनी आहुति स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढ़ानी पड़ेगी”। लेकिन सर्वप्रथम मैं धारा सभा में होने वाले मतदान के दिन बम फेंक कर अपने को कैद कराऊंगा, और फाँसी के तख्ते को चूम कर क्रान्ति की लौ प्रज्वलित करूंगा, भगतसिंह ने कहा।

सभी ने बड़ी कोशिश की कि भगतसिंह अभी फाँसी पर न चढ़ें। मरने के लिए होड़ लग गयी। लेकिन भगतसिंह विजयी हुए उन्हें अपने “प्राणों की भेंट” चढ़ाने से कोई रोक न सका। “ट्रेड डिस्प्यूट बिल” पर जैसे ही मतदान की घंटी बजी भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त— दो महानतम क्रांति प्रणेताओं ने धारा-सभा में बम फेंक दिया, और अपने स्थान पर अडिग खड़े रहे। यदि चाहते तो भाग सकते थे। अपने को बचा सकते थे। लेकिन आज वे भागने नहीं आए थे। प्राण बचाने नहीं आए थे। आए थे भारत माता की स्वाधीनता की बलिवेदी पर अपने प्राणों की भेंट

चढ़ाने के लिए। पुलिस ने थोड़ी ही देर में दोनों बहादुरों को बन्दी बना लिया।

(३)

भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त पर बम काण्ड के सिलसिले में मुकदमा चलाया गया। उन्हें आजीवन कारावास की सख्त सजा दी गयी। उसी समय लाहौर पड़यन्त्र केस तथा सान्डर्स हत्या केस में भी भगतसिंह को कठोर सजा दी गयी।

सरकार जानती थी कि भगतसिंह के जीवित रहने से क्रान्ति की ज्वाला दिन दूनी रात चौगुनी धधकती रहेगी चाहे वे जेल में ही क्यों न रहें? यही कारण था कि सरकार ने एक अध्यादेश के माध्यम से भगतसिंह का मामला एक ट्रिब्यूनल को सौंप दिया। इस ट्रिब्यूनल के निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं हो सकती थी। ट्रिब्यूनल ने ७ अक्टूबर १९३० को निर्णय सुनाया। जिसके आधार पर भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को फाँसी की सजा दी गयी थी। भगतसिंह फाँसी की सजा सुनकर फूले नहीं समाए। वे चाहते थे कि क्रान्ति की वलिवेदी पर हमारा प्राण-पुष्प समर्पित हो जिससे क्रान्ति आगे बढ़े।

इस निर्णय से सारे देश में शोक छा गया। प्रिवी कौन्सिल में किसी तरह से अपील की गयी लेकिन वहाँ अपील रद्द कर दी गयी। भगतसिंह ने देश तथा परिवार को ढाँढस बंधाया।

२३ मार्च १९३१ ई०। सांयकाल ७ बजे थे। भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव भारत माता के यह तीन बलिदानी सपूत फाँसी के तख्ते की ओर हँसते हुए बढ़े। रस्सी तथा तख्ते को चूमा। “इन्कलाब जिन्दाबाद” “भारत माता की जय” का उद्घोष करते हुए स्वतन्त्रता की वलिवेदी पर मधुर हंसी के साथ तीनों वीरों ने अपने प्राणों की भेंट चढ़ा दी। इन तीनों नवयुवकों की मृत्यु से समस्त राष्ट्र क्रोधाग्नि में भभक उठा और अंग्रेजों को समूल उखाड़ फेंकने में कटिबद्ध हो उठा। इन शहीदों के बलिदान से ही प्रेरणा प्राप्त कर नवजवान सिर पर कफन बाँध कर निकल पड़े। इन अमर शहीदों का बलिदान हमें अनन्त काल तक प्रेरणा देता रहेगा।

आज धर्म की रक्षा के लिए हम प्राणों की भेंट देने वाले
वीर युवकों की आवश्यकता है—

आओ हम तुम प्यार कर, लड़ना छोड़ें प्यार करें ।

प्यार हमारा मूल मन्त्र हो,
प्यार मधुर हो प्रिय व्यापार,
द्वेष भाव से दूर रहें सब,
दूर-दूर हों कटु आधार ।
प्रेम हृदय में सब के प्रति हो,
प्रेम भाव हो उच्च महान्,
प्रभु दो सबको यही प्रेरणा,
भक्ति यही दो, लक्ष्य ललाम ।

प्रेम भावना से विजयी हों,
धरती स्वर्ग बनाएंगे ।
प्रेम मन्त्र के गीत गुंजाकर,
सब को एक बनाएंगे ।
दुःख सन्ताप मिटाएंगे,
क्लेश कठिन कट जाएंगे ।
सब दारिद्र्य भगाएंगे,
वसुधा नयी सजाएंगे ।

सच्चाई मानव का धन

जो भी सच को अपनाएगा
बहुत बड़ा बन जाएगा
मैया कभी न बोले झूठ
चाहे दुनियां जाए रूठ ॥
गुरुओं का तुम करना आदर
शीघ्र झुकाना उनको सादर
मात पिता का कहना मान
करना तुम उनका सम्मान ॥
इतनी मानो मेरी सीख
इसमें ही जीवन की जीत
यही सफलता का है सार
सत्य उन्नति का आधार ॥
सच्चाई मानव का धन
इससे हर्षित रहता मन
यह सच्चे सुख का साधन
करना इसका आराधन ॥

—सुदीप

उद्धवोधन (भजन)

वेद मंत्रों से नित यज्ञ करते रहो,
एक दिन शुद्ध जीवन संभल जाएगा ।
मार्ग चलते रहो ऋषि दयानन्द का,
दुख प्रपञ्चों का भ्रमजाल मिट जाएगा ॥
ब्रह्म वेला में जागो, करो स्वच्छ तन,
ओ३म् बोले मगन होगी बुद्धि विमल ।
वेद मन्त्रों का गायन करो प्रेम से,
भाग्य का शुभ सितारा चमक जाएगा ॥
वेदमंत्रों ।

सच्चिदानन्द सत्यं शिवम् सुन्दरम्
मंगलं दीनजन पाहि शरणागतम्
प्रभु से विनती करो होके एकाग्र मन,
सार सद्ज्ञान का तुमको मिल जाएगा ॥
वेदमंत्रों ।

शुद्ध जीवन बने वस यही चाह हो,
ज्योति मय हम बनें ज्ञान की राह हो,
सब सुखी हों निरोगी न दुख दाह हो,
ऐसे साधन से भगवान् मिल जाएगा ॥
वेदमंत्रों ।

वह प्रभु अति दयालु सदा पास है,
ध्यान रखो तुम्हारा वही खास है,
“जयकरण” को उसी की लगी आस है,
उसकी महिमा से भव सिन्धु तर जाएगा ॥
वेदमंत्रों ।

—जयकरण मिश्र

धन्य धन्य वह.....

धन्य धन्य वह वीर शिवाजी ।
 धन्य धन्य प्रणवीर प्रताप ॥
 मुगलों से हंस-हंस टकराए ।
 उनको नाकों चने चबाए ॥
 स्वतन्त्रता का दीप जलाया ।
 आजादी का राग गुंजाया ॥
 तन-मन-धन अपना वारा ।
 आजादी के हित सारा ॥
 हम उनका करते वन्दन ।
 करते उनको सदा नमन ॥
 दयानन्द ने पथ दर्शाया ।
 आजादी का नाद गुंजाया ॥
 श्रद्धानन्द ने दे निज जीवन ।
 आर्य जाति का मान बढ़ाया ॥
 विस्मिल ने देकर कुर्बानी ।
 आजादी लेने की ठानी ॥
 आओ उनकी गाथा गाएं ।
 उनको श्रद्धा सुमन चढ़ाएं ॥

जय-जय भारत भूमि
 महान्

जय जय भारत भूमि महान् ।
 तू ऋषियों की धरती प्यारी
 तुझमें बहती सरिता न्यारी
 तेरा कण कण ही पावन है
 तू सबको ही मन-भावन है
 विश्व सकल गाता गुणगान ।
 तुझ में ज्ञान वेद का गूँजे
 गीता को सारा जग पूजे
 कर्मयोग की सीख सुनाती
 दीन दुखी को गले लगाती
 ऐसी हैं तू सुख की खान ।

—कु० ऋचा

मैं किसी वरदान का
 याचक नहीं हूँ ?

सांत्वना के स्वर सहेजो पास अपने
 मैं किसी वरदान का याचक नहीं हूँ ।
 मैं सदा श्रमके सहारे ही जिया हूँ
 सिर्फ श्रम में ही रही है, भक्ति मेरी
 हर कुटिल मुस्कान मुझको शक्ति देती,
 लेखनी के प्रति रही आसक्ति मेरी ।
 मैं नियंता का यही वर मानता हूँ
 हर भले और बुरे को पहचानता हूँ ।
 हूँ अलग यह बात चुप हूँ, चुप रहूँगा
 किन्तु तुम क्या हो बखूबी जानता हूँ ।
 हृदय में आक्रोश है, आक्रोश ही दो —
 मैं भ्रमित मुस्कान का याचक नहीं हूँ ।
 दीप की लौ सांत्वना देती नहीं है,
 स्नेह देती है, अमावस के क्षणों में
 मैं समझता हूँ वही गतिशील पग है,
 जो नहीं उलझे कभी अपने व्रणों में ।
 मैं नहीं दीवार छू-छूकर चला हूँ,
 ठोकरों के वार मस्ती से सहे । हूँ
 हर अंधेरे ने मुझे सुख ही दिया है,
 क्योंकि मेरे हृदय सदा खोजी रहे हैं
 दे सको आशीष के दो बोल दे दो
 मैं किसी अहसान का याचक नहीं हूँ ।
 मैं नियति के क्रूर हाथों में पला हूँ,
 हर अंधेरे में दिया बनकर जला हूँ
 दंभ से परिचय बहुत पर प्रिय नहीं है
 तुम मिली, निश्छल रही, इतना बहुत है
 क्या भला परिचय, अगर आघात ही दें,
 विवश जीवन की कसैली बात ही दे ।
 मैं अपरिचय मे बड़ा सुख मानता हूँ
 मैं किसी पहचान का याचक नहीं हूँ
 मैं किसी वरदान का याचक नहीं हूँ ।

मां का ममत्व

चन्द्रशेखर आजाद को फरार अवस्था में, अपने गांव का एक परिचित आदमी हरिद्वार में मिल गया। आजाद ने उससे कहा कि तुम गांव जा रहे हो, मेरी मां से कह देना कि मैं तुम्हें मिला था और प्रसन्नतापूर्वक हूँ। मां बहुत ही चिंतित होगी, क्योंकि बरसों से मैं घर नहीं जा सका हूँ।

वह आदमी जब वापस घर पहुंचा, तो सबसे पहले आजाद की मां से मिलने गया। उनके घर के इर्द-गिर्द पुलिस का पहरा पड़ा हुआ था। जब उस आदमी ने जाकर घर का दरवाजा खटखटाया, तो आजाद की मां ने सोचा कि पुलिस वाले दरवाजा खटखटा रहे हैं। अतः भीतर से ही बोली—‘अरे मुओ, क्यों मुझ बुढ़िया को तंग कर रहे हो ! कितनी बार तुम्हें कह चुकी कि चंद्रशेखर यहां नहीं है, कितनी बार तुम्हें घर की तलाशी दे चुकी। फिर भी तुम हो कि मुझे बार-बार तंग किये जा रहे हो।’

उस आदमी ने बाहर से अपना नाम बताया और बोला—“मां मैं हूँ।”

बुढ़िया अपने आंचल से ढककर एक दीया लिये आयी, दरवाजा खोला और उसे भीतर ले गई। जब उस आदमी ने आजाद से अपने मिलने की बात कही और उनकी कुशलता का समाचार बताया, बूढ़ी मां के आनन्दाश्रु उमड़ आये। उसने पूछा—‘बेटा, चंद्रशेखर के साथ तुम्हारा फिर भी मिलना होगा क्या ?’

उसने बताया—‘मां, मैं तो यहाँ दो दिन के लिए ही आया हूँ। परसों फिरती जा रहा हूँ। चंद्रशेखर से मेरी बात हो चुकी है, वे मुझे वहीं मिलेंगे।’

बुढ़िया ने कांपते हुए हाथों से अपनी पुरानी-सी ओढ़नी के पल्ले की गांठ खोली। उसमें से एक दुअन्नी निकाली और गद्गद कंठ से कांपती हुई वाणी में बोली—‘मेरे चंद्रशेखर को कलाकंद खाने का बहुत शौक है। इस दुअन्नी का कलाकंद खरीदकर मेरे आँखों के तारे को यह कह कर तुम अपने हाथ से खिलाना कि यह तुम्हारी मां का भेजा हुआ है।’

---भागीरथ कानोड़िया

बोध कथां

—उर्मिला श्रायं

ईश्वर कहां और क्या ?

एक राजा ने अपने विदूषक से पूछा—‘ईश्वर कहां रहता है, किधर देखता है, और क्या करता है ?

विदूषक चकराया कि क्या उत्तर दे । जब उसे कोई उत्तर न सूझा तो उसने कहा—‘महाराज ! मुझे एक सप्ताह का समय दीजिए, तब मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूंगा ।’ एक सप्ताह का समय मिल गया । विदूषक उत्तर सोच रहा था, किन्तु उसे कुछ सूझता नहीं था । विदूषक के यहाँ एक नौकर भी रहता था, उसका नाम था हल्का । विदूषक को चिन्तित देखकर एक दिन हल्के ने पूछा—‘मालिक ! आप बहुत चिन्तित रहते हैं, क्या कारण है ? विदूषक ने कारण बताया तो हल्का बोला—‘आप मुझे राजा के यहाँ ले चलें तो मैं उत्तर दे दूंगा ।’ अवधि की समाप्ति पर हल्का को दरबार में उपस्थित कर विदूषक ने कहा—‘राजन् ! आपके प्रश्न इतने सरल हैं कि उनका उत्तर मेरा यह नौकर हल्का भी दे सकता है ।’

महाराज ने हल्का से पूछा—‘बताओ ईश्वर कहां रहता है ।’ वह बोला—‘राजन् पहले अतिथि का सत्कार किया जाता है, फिर उससे पूछा जाता है । आपने तो बिना आतिथ्य के ही प्रश्न पूछना प्रारम्भ कर दिया ।’ महाराज कुछ लज्जित हुए और अतिथि के लिए दूध लाने का आदेश दिया । हल्के ने दूध का कटोरा बाएं हाथ से पकड़ा और दाएं हाथ की तर्जनी उंगली से चलाकर तथा बार-बार उंगली को दूध से बाहर निकालकर देखता रहा । महाराज ने पूछा—‘यह क्या कर रहे हो ? वह बोला सुना था कि दूध में मक्खन होता है मैं वही ढूँढ रहा हूँ ।’ राजा ने कहा—‘दूध में मक्खन होता है, उसकी प्रत्येक बूंद में एक-एक कण मक्खन है, परन्तु वह ऐसे दिखाई नहीं देता । पहले दूध को गरम करना पड़ता है फिर उसमें जामन लगाते हैं, तब उसका दही जमता है और दही को मथने से ही मक्खन प्राप्त होता है ।’

हलके ने कहा—“महाराज ! यही तो आपके प्रश्न का उत्तर है । परमात्मा प्रत्येक स्थान पर कण-कण में विद्यमान है । उसे पाने के लिए यम-नियमों का अनुष्ठान करना पड़ता है । ध्यान का जामन लगाना पड़ता है । फिर ‘ओ३म्’ की मथनी से उसे मथना पड़ता है तब परमात्मा रूपी मक्खन सर्वत्र दिखाई पड़ता है । अभ्यास से ही आत्मा में निवास करने वाले परमदेव परमात्मा का साक्षात्कार संभव है ।” महाराज बोले—“बहुत ठीक ! अब यह बताओ कि परमात्मा किधर देखता है ?”

हलके ने एक मोमवत्ती जलाई और पूछा—“राजन् ! यह मोमवत्ती किधर देखती है ?” राजा ने कहा—“यह वत्ती किसी एक ओर नहीं अपितु चारों ओर देखती है, उसका प्रकाश सर्वत्र है ।” हलके ने कहा—इसी प्रकार ईश्वर सर्वद्रष्टा है, वह सभी प्राणियों के कर्मों को देखता है ।”

महाराज बोले मेरा अंतिम प्रश्न है “ईश्वर क्या करता है ?”

हलका बोला—“राजन् ! यह बताइए कि आप गुरु बनकर पूछ रहे हैं, या शिष्य बनकर ।” राजा बोले, “मैं शिष्य बनकर ही पूछता हूँ ।”

हलका ने कहा—“वाह ! महाराज ! आप बहुत अच्छे शिष्य हैं । गुरु तो जमीन पर खड़ा है और आप सिंहासनासीन हैं । कमाल का है आपका शिष्टाचार !”

महाराज पुनः लज्जित हुए । वह राज सिंहासन से नीचे उतरे और हलके को सिंहासन पर बैठाया तथा प्रश्न किया—“अच्छा अब बताइए कि परमात्मा क्या करता है ?”

हलके ने उत्तर दिया “अब भी कुछ बताना शेष रह गया है क्या ! आप देख नहीं रहे कि वह राजा को रंक और रंक को पलभर में राजा के सिंहासन पर बैठा देता है ।”



सेवा से मेवा

मेवे के एक व्यापारी से मैंने बादाम और पिस्ते का भाव पूछा । उसने सौ रुपये प्रति किलो से अधिक बताया । मैंने प्रश्न किया कि तुम्हारे यहां इतना बड़ा भंडार है इन चीजों का, इस भाव पर भला कैसे विकता होगा ?

उसने उत्तर दिया “इसे बेचने में कोई भी कठिनाई नहीं होती । बड़े व्यापारी अफसरों को “डाली” देने के लिए सबका सब खरीद ले जाते हैं । जो अफसर वैसे भ्रष्ट नहीं है, वे भी डाली लेने में कोई संकोच नहीं करते ।

—ग्राचार्य कृपलानी

हमारा प्राणाधार धर्म

वर धर्म वैदिक ही हमारा, पूज्य प्राणाधार है ।
आनन्द का आगार है, प्रभु प्रेम पारावार है ॥१॥

मुनि बैठकर वीहड़ वनों में जो मनन करते रहे ।
अभिमान कर जिस पर मनस्वी मोद से मरते रहे ॥
वह आर्यजन के विश्व-वैभव का विमल विस्तार है ।
वर धर्म वैदिक ॥२॥

जो पूर्व ऋषियों के हमारे, रक्त से सींचा गया ।
जिसके लिये सूली चढ़ाकर, चर्म तक खींचा गया ॥
वह वीर बलिदानी जनों के प्रिय हृदय का सार है ।
वर धर्म वैदिक ॥३॥

सब सृष्टि का साम्राज्य भी हमको अगर मिलता रहे ।
वर विश्व का वैभव हमारे सामने हिलता रहे ॥
तो भी हमें तो प्राण प्यारा धर्म ही स्वीकार है ।
वर धर्म वैदिक ॥४॥

संसार की आपत्तियां आकर अगर आगे अड़ें ।
उनकी चली क्या, हो अगर, यमराज से हम लड़े ॥
पर त्याग करना धर्म वैदिक का न अंगीकार है ।
वर धर्म वैदिक ॥५॥

मरते समय भी हो हमारी, प्रार्थना परमेश से ।
दे जन्म भारत में पुनः, श्रद्धा स्वधर्म स्वदेश से ॥
वस वेद ही संसार तमहर "सूर्य" सुखमा सार है ।
वर धर्म वैदिक ही हमारा पूज्य प्राणाधार है ॥६॥

श्री डा० सूर्यदेव शर्मा शास्त्री, साहित्यालंकार
(एम० ए० डी० लिट्, अजमेर)

वेद प्रचार सप्ताह पर विशेष लेख

—प्रो० रामविचार एम० ए०

उधर भय है : इधर अभय

मेतं पन्थामनुगा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।

तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥

अथर्व ८.१.१०

वेद मन्त्र कहता है कि इस रास्ते पर मत चल, यह भयावना है। जिस मार्ग से तू पहले नहीं गया है, उसी मार्ग को कहता हूँ। हे पुरुष ! इस अन्धकार में आगे पद मत रख। उस ओर भय है और इस ओर अभय है।

वेद में जहाँ बहुत-सी सच्चाइयाँ स्पष्ट रूप से कही गई हैं, वहाँ कई तथ्य संकेतात्मक और प्रतीकात्मक रूप में कहे गए हैं। इस वेद-मन्त्र में भी जीवन के एक महत्वपूर्ण रहस्य को संकेतात्मक रूप से दर्शाया गया है। वेद ने इस मन्त्र में दो मार्गों की ओर संकेत किया है। एक मार्ग भयंकर है तो दूसरा अभयंकर है। एक मार्ग पर प्रकाश है तो दूसरे पर अन्धकार है। वेद का आदेश है कि तू भयप्रद और अन्धकारपूर्ण मार्ग पर मत चल बल्कि भयरहित और प्रकाशमान मार्ग पर चल। प्रश्न उठता है कि वे दो मार्ग कौन से हैं ? जो भयप्रद और अन्धकारपूर्ण मार्ग है वह है भौतिकवाद का मार्ग और जो भयरहित और प्रकाशमान मार्ग है वह है अध्यात्मवाद का मार्ग। वेद कहता है कि तू पहले मार्ग पर अर्थात् भौतिकवाद के मार्ग पर मत चल और दूसरा मार्ग जो अध्यात्मवाद का मार्ग है उस पर चल।

प्रश्न यह उठता है कि भौतिकवाद क्या है और अध्यात्मवाद क्या है ? केवल प्रकृति की उपासना है भौतिकवाद और केवल आत्मचिन्तन और ईश्वरोपासना है अध्यात्मवाद। केवल इन्द्रियों की उपासना है भौतिकवाद और केवल इन्द्र अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का चिन्तन है अध्यात्मवाद। भौतिकवाद केवल इहलोक में विश्वास रखता है और अध्यात्म केवल परलोक में विश्वास रखता है। भौतिकवाद केवल वर्तमान की बात सोचता है और अध्यात्मवाद केवल भविष्य की। भौतिकवाद केवल प्रकृतिजन्य पदार्थों के सेवन में विश्वास रखता है और अध्यात्मवाद केवल अप्राकृतिक पदार्थों के सेवन में। भौतिकवाद जहाँ केवल प्रकृति की सत्ता को स्वीकार करता है वहाँ अध्यात्मवाद केवल आत्मवाद को मानता है।

भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद की ये अतिवादी परिभाषाएँ हैं। इन्हीं दो अतिवादी परिभाषाओं के आधार पर संसार में मनुष्यों के दो दल बन जाते हैं। पहला दल उन व्यक्तियों का है जिनका उद्घोष है कि खाओ, पिओ और मौज उड़ाओ। ये विशुद्ध भौतिकवादी व्यक्ति हैं जिनका आत्मा, परमात्मा, मोक्ष अथवा पुनर्जन्म में विश्वास नहीं। इनकी दृष्टि में एक ही जीवन है और एक ही जन्म है। इन विचारों में जो आंखों से दिखाई दे, जो कानों से सुनाई दे, जो त्वचा से स्पर्श किया जाए, जो नासिका से सूँघा जाए, रसना से जिसका स्वाद लिया जाए—वस यही वस्तुएं सत्य हैं और जो अतीन्द्रिय पदार्थ हैं, उनकी सत्ता को ये भौतिकवादी स्वीकार नहीं करते। वर्तमान युग में साम्यवाद इस भौतिकवाद का प्रबल प्रचारक है और अध्यात्मवादी मान्यताओं को समाप्त करने का संकल्प किए हुए हैं। ये विशेष कोटि के भौतिकवादी हैं।

सामान्य कोटि के भौतिकवादियों में मैं उनकी गणना करता हूँ कि जो आध्यात्मिक मूल्यों को तो स्वीकार करते हैं परन्तु क्रियात्मक रूप से आत्मचिन्तन और परमात्म-चिन्तन के लिए कोई समय नहीं निकालते। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति आजीविकोपार्जन, घर-गृहस्थ के कार्यों की सम्पूर्णता और चल-अचल सम्पत्ति का उपार्जन ही उनके जीवन का लक्ष्य होता है। प्रत्येक मत-मतान्तर में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है जो केवल परम्परागत मान्यताओं के आधार पर ही अध्यात्मवादी हैं, आत्मचिन्तन और परमात्मचिन्तन को क्रियात्मक रूप से न वे अपनाते हैं और न उसके लिए समय निकालते हैं। ऐसे व्यक्ति वाचिक रूप से और सैद्धान्तिक रूप से तो अध्यात्मवादी हैं परन्तु क्रियात्मक रूप से वे अध्यात्मवादी नहीं कहे जा सकते।

तीसरी कोटि में वे व्यक्ति आते हैं जो संसार के सब कार्य-व्यापार करते हुए प्रातः-सायं कुछ समय आत्म-चिन्तन और परमात्म-चिन्तन के लिए निकालते हैं परन्तु विशेष रूप से आत्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन की दिशा में विशेष उपलब्धि नहीं कर पाते। ये सामान्य कोटि के अध्यात्मवादी हैं।

चौथी कोटि में वे व्यक्ति आते हैं जिन्होंने आध्यात्मिकता के कारण वैराग्य धारण कर लिया है। जिन्होंने संन्यास धारण करके आत्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन को ही जीवन का लक्ष्य बना लिया है। तू एकान्त-सेवन नितान्त आवश्यक भौतिक साधनों की उपलब्धि और योगसाधन ही जिनके जीवन का लक्ष्य है।

दूसरी कोटि वालों से हमारा इतना ही निवेदन है कि वे अपने जीवन को एकांगी न बना कर सर्वांगीण लक्ष्य को धारण करें। इस वेद-मन्त्र-व्याख्या में प्रथम कोटि के व्यक्तियों से ही हमारा अभिप्राय है जो जीवन का लक्ष्य केवल खाना-पीना और मौज उड़ाना ही मानते हैं।

यहां एक बात की ओर संकेत करना भी आवश्यक है कि शरीर की पुष्टि, गृहस्थ के कार्यों की सिद्धि और चल एवं अचल सम्पत्ति का उपार्जन भौतिकवाद नहीं है। हां, केवल इन्हीं वस्तुओं में उलझ कर रह जाना और आत्मवाद की ओर सर्वथा ध्यान न देना तो सामान्य कोटि के भौतिकवाद का ही रूप धारण कर लेता है। विशेष कोटि का भौतिकवाद तभी अपना रूप धारण करता है कि जब मनुष्य आत्मवाद को छोड़ कर केवल प्रकृतिवादी बन जाता है और खाना-पीना और मौज उड़ाना ही उसके जीवन का मात्र लक्ष्य बन जाता है। प्रस्तुत व्याख्या में इसी भौतिकवाद का खण्डन हमारा लक्ष्य है। वेद की भाषा में यही मार्ग भयप्रद और अन्धकारपूर्ण है।

भौतिकवादियों की प्रमुख मान्यता है कि परमात्मा, आत्मा, पुनर्जन्म और मोक्ष नाम की कोई वस्तु नहीं। वेद इन्हीं मान्यताओं के मार्ग को भयप्रद और अन्धकारपूर्ण मार्ग बताता है और मनुष्य को इस मार्ग से बचने की प्रेरणा देता है।

इस वेद-मन्त्र-व्याख्या में भौतिकवादियों के सैद्धान्तिक पक्ष की आलोचना उपस्थित करना हमारा लक्ष्य नहीं है। भौतिकवादियों के व्यावहारिक पक्ष की ही समीक्षा करना यहां हमारा लक्ष्य है। इनके व्यावहारिक पक्ष का सार एक ही वाक्य के अन्तर्गत आ जाता है और इनका वह वाक्य जगप्रसिद्ध है 'खाओ और मौज उड़ाओ।' संसार की प्रत्येक भाषा में अपने-अपने ढंग से इसका अनुवाद प्राप्त हो जाता है। खाने-पीने का उद्घोष करने वाले इस प्रकार कहते हैं—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।

भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनंकुतः ।

भौतिकवादियों का यह सिद्धान्त है कि जब तक जियो, सुखपूर्वक जियो। घी पियो चाहे ऋण लेकर पियो। यह शरीर भस्म हो जाने वाला है, फिर लौटकर संसार में आना कहां? अर्थात् खूब मौज उड़ाओ, पुनर्जन्म का सिद्धान्त मिथ्या है। जितना हो सके संसार के विषयों का उपभोग करो।

कहते हैं कि बाबर भी ऐसा ही कहा करता था—

नौरोजो नौबहारो मयो दिलरुबा खुशअस्त

बाबर बऐश कोश कि आलम दुबारा नेस्त ।

वसन्त ऋतु है, शराब है, विषय-विकार की पूर्ति के सब सामान हैं। बाबर, तू ऐश कर कि फिर संसार में आना नहीं होगा। उर्दू के एक कवि ने इसी भावना को प्रकट किया है।

खुबह उठ जाम से गुजरती है
 सब बल्ला आराम से गुजरती है
 आकित की खबर खुदा जाने
 अब तो आराम से गुजरती है ।

प्रातः उठकर शराब का प्याला पिया जाता है । रात्रि भी आराम से गुजर जाती है । आगे क्या होगा, यह तो ईश्वर जाने परन्तु अब तो आराम से बीत रही है । भौतिकवादी भविष्यत् का चिन्तन करके वर्तमान काल के सुनहरे स्वप्नों को भंग नहीं करना चाहता ।

रावण जब सीता जी को उठा कर लंका ले गया तो उसने उन्हें अशोक वाटिका में रखा । उसने सीताजी को अपने जाल में फंसाने के लिए कई साधन अपनाए । उसने यह भी एक उपाय अपनाया और कहा—

भुंक्ष्व भोगान् यथा कामं पिब भीर रमस्व च

सीता को कहा कि तू भोगों को भोग, पी और रमण कर । अंग्रेजी में इसका अनुवाद किया गया है :—

Eat, drink and be merry

अर्थात् खाओ, पिओ और मौज उड़ाओ । कोई भी भाषा ले लो परन्तु भौतिकवादी दृष्टिकोण सबमें समान रूप से पाया जाता है और यह दृष्टिकोण केवल तीन ऊपर कहे हुए शब्दों में ही समाविष्ट है ।

खाने, पीने और मौज उड़ाने की धारणा को लेकर संसार में दो मार्ग बन जाते हैं । यह मार्ग प्रेयमार्ग के नाम से कहलाता है । इससे विपरीत मार्ग श्रेय मार्ग कहलाता है । व्यक्ति जब चिन्तन के दोराहे पर खड़ा होता है तो विचार करता है कि मैं किस रास्ते को अपनाऊं ।

**दोराहे पे है कारवां जिन्दगी का
 मैं इस तरफ जाऊं कि उस तरफ जाऊं ।**

कठोपनिषद् के ऋषि ने मनुष्य की इस उलझन को बड़े सुन्दर शब्दों में उपस्थित किया है ।

**अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते
 उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः
 तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति
 र्थाद्यउ प्रेयो वृणीते ।**

यमाचार्य नचिकेता को उपदेश देते हुए कहते हैं कि श्रेय मार्ग कुछ और है और प्रेय मार्ग कुछ और । ये दोनों मार्ग मनुष्य को अपने-अपने ढंग से बांधते हैं । इनमें से श्रेय मार्ग का ग्रहण करने वाला अच्छा होता है और जो प्रेय मार्ग को अपनाता है, वह उच्च उद्देश्य से गिर जाता है ।

श्रेय मार्ग है प्रवृत्ति मार्ग और प्रेय मार्ग है निवृत्तिमार्ग । जो प्रवृत्ति मार्ग को निवृत्ति मार्ग का साधन बना लेते हैं, वे व्यक्ति ही वास्तव में श्रेष्ठ हैं और जो केवल संसार के पदार्थों के भोग के मार्ग को अपनाते हैं, वे उच्च लक्ष्य से गिर जाते हैं । यमाचार्य ने यह बात भी कही कि —

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ
सम्परीत्य विविनक्ति धीरः
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥

श्रेय और प्रेय मनुष्य को प्राप्त होते हैं । उन दोनों को प्राप्त करके धीर पुरुष विचार करता है । विद्वान् प्रवृत्ति मार्ग को छोड़ कर निवृत्ति मार्ग को अपनाता है परन्तु मन्दबुद्धि व्यक्ति सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए प्रवृत्ति मार्ग को अपनाता है ।

इसी श्रेय और प्रेय मार्ग को कठोपनिषद् में विद्या और अविद्या नाम से पुकारा गया है । ऋषि ने कहा—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः
दन्दम्यमानाः परियन्ति मूढा
अन्धनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

अविद्या में पड़े हुए अपने को धीर और विद्वान् मानते हुए, उलटे रास्ते पर चलते हुए व्यक्ति ऐसे ही हैं जैसे अन्धे से ले जाए गए अन्धे धूमते हैं । इस कारिका में श्रेय मार्ग को विद्या और प्रेय मार्ग को अविद्या के नाम से पुकारा गया है ।

संसार में चौथी कोटि के ऐसे भी महापुरुष हुए जिन्होंने श्रेय मार्ग को एकान्त रूप से अपना लिया । उन्होंने प्रेय मार्ग अथवा प्रवृत्ति मार्ग को सर्वथा ठुकरा दिया । ऐसे ही व्यक्तियों में नचिकेता, महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम आते हैं ।

नचिकेता यमाचार्य से अध्यात्म-विद्या की शिक्षा लेने के लिए गया । यमाचार्य ने ब्रह्मविद्या की महत्ता को सुरक्षित रखने के लिए और नचिकेता की इस विद्या

के प्रति पावता जांचने के लिए उसे कई प्रकार के प्रलोभन दिए । यमाचार्य ने नचिकेता को कहा—

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व,
 बहून् पशून् हस्ति हिरण्यमश्वान् ।
 भूमेर्महदायतनं वृणीष्व,
 स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥
 ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके,
 सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व ।
 इमा रामाः सरथाः सतूर्या,
 न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
 आभिर्मत्प्रत्ताभि परिचारयस्व,
 नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥

अर्थात् तू सौ वर्ष की आयु वाले पुत्रों और पौत्रों को मांग ले, बहुत से पशुओं अर्थात् हाथी, घोड़ों को मांग ले । बड़े माण्डलिक राज्य को मांग ले । जितने वर्ष तू जीवित रहना चाहे, जीवित रहने का वर मांग ले परन्तु इस अध्यात्म-विद्या के विषय में मत पूछ । यदि तू चाहता है तो धन और चिरकालीन आजीविका को मांग ले । संसार में जो दुर्लभ कामनाएँ हैं तू उनको मांग ले । मेरे द्वारा दी गई सुन्दर स्त्रियों से तू सेवा करा और निश्चित रूप से तुझे ऐसी स्त्रियाँ नहीं मिलेंगी । हे नचिकेता ! तू मृत्यु की बात को मुझ से मत पूछ ।

नचिकेता को बहुत प्रलोभन दिए गए परन्तु नचिकेता को आध्यात्मिकता के प्रति दृढ़ निष्ठा थी । उसे ये सब प्रलोभन अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सके । उसने उत्तर दिया—

- १ श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
 सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
 अपि सर्वं जीवितमल्पमेव,
 तत्रैव बाहास्तव नृत्यगीते ॥
- २ न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो,
 लप्स्यमहे वित्तम् मद्राक्ष चेत्त्वा ।
 जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं,
 वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥

अर्थात् ये विषय-विकार और संसार के पदार्थ कल ही कल रहने वाले हैं

और सब इन्द्रियों के तेज को नष्ट कर देते हैं। यह जीवन कोई लम्बे समय का नहीं है, अत्यन्त संक्षिप्त है। ये सब वाहन और ये सब नृत्य एवं गीत आपको ही मुबारिक हों। मनुष्य धन से तृप्त नहीं होता। तुझे देख कर क्या हम धन को प्राप्त होंगे? जब तक तू चाहेगा, हम जिएंगे। इसलिए मुझ को वर तो आध्यात्मिकता का ही मांगना है!

अध्यात्मिकता के प्रति इतनी दृढ़ता को देखकर यमाचार्य ने उसे कहा—

दूरमेते विपरीते विषूची,
अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याऽभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये,
न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥

अर्थात् भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद के ये दो मार्ग एक दूसरे से विपरीत, विरुद्धार्थ-सूचक और दूर हैं। मैं तुझ नचिकेता को अध्यात्मवाद का चाहने वाला मानता हूँ क्योंकि तुझे बहुत सी कामनाएं प्रलोभित नहीं कर पाई हैं। भली-भाँति परीक्षण करने के पश्चात् यमाचार्य ने नचिकेता को अध्यात्म विद्या का उपदेश दिया।

महात्मा बुद्ध की भी यही अवस्था थी। उनके पिता ने देखा कि सिद्धार्थ में सांसारिकता के प्रति कोई रुचि नहीं है उन्होंने सिद्धार्थ को सांसारिक प्रलोभनों की ओर आकर्षित करने का बड़ा प्रयत्न किया। उन्हें दुःखदायक दृश्यों से परे रखने का प्रयत्न किया गया। उनका विवाह कर दिया गया ताकि वे काम के आकर्षण में बंध सकें। उनके यहां एक सुन्दर पुत्र की उत्पत्ति हुई। राज-पाट, धन-धान्य, सम्पत्ति-वैभव, रूपवती स्त्री और नवजात सुन्दर शिशु—ये सभी पदार्थ उन्हें अपने वन्धन में न बांध सके। कितना प्रबल वैराग्य था! कितनी अनासक्ति थी! सांसारिक पदार्थों के प्रति कितनी अनासक्ति थी! आध्यात्मिकता के प्रति उनका कितना आकर्षण था! वैदिक सिद्धान्तों की दृष्टि से हमारा कितना ही मतभेद क्यों न हो, हम महात्मा बुद्ध के महान् त्याग और वैराग्य की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते।

महर्षि दयानन्दजी महाराज में भी वैराग्य की बड़ी प्रबलता थी। उनके वैराग्य का पोषण करने के लिए दो घटनाएं प्रस्तुत की जाती हैं।

महर्षि दयानन्द घर छोड़कर भ्रमण करते हुए एक बार ओखी मठ पर पहुंचे। स्वामी जी के ज्ञान और गुणों पर उस मठ का मुख्य महंत मोहित हो गया और चेला बन जाने के लिए उन्हें प्रेरणा करता हुआ बोला—“यदि हमारे शिष्य बन जाओ तो गद्दी के स्वामी हो जाओगे। लाखों रुपयों की सम्पत्ति तुम्हारे हाथ

में हो जाएगी। तुम महंत कहलाओगे इसलिए मान-प्रतिष्ठा का भी पार न रहेगा। इस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक यथेष्ट सुख भोगोंगे।” महर्षि दयानन्दजी ने उत्तर दिया—“तुम्हारा यह कथन सब व्यर्थ है। मेरे पिता की सम्पत्ति आपकी पूजा-पाठ के पाखण्ड द्वारा एकत्रित की पूंजी से कई गुणा अधिक हैं। जब मैं उसे भी काष्ठ-लोष्ठ समान त्याग आया हूं तो आपके धनधान्य की ओर कब ध्यान कर सकता हूं? जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने सकल सांसारिक सुखों से मुख मोड़ा और ऐश्वर्य-शाली पितृ-गृह को सदा के लिए छोड़ा है मैं देखता हूं उस उद्देश्य पर न तुम चलते हो और न तुम लोगों को उसका कुछ ज्ञान ही है। इस अवस्था में चेला बनना तो दूर, मेरा तुम्हारे पास रहना भी असम्भव है।”

दूसरी घटना उदयपुर से सम्बन्धित है। एक दिन महाराज अकेले बैठे हुए थे। उस समय श्री राणाजी पधारे और गुरु महाराज से विनीत विनय करने लगे, “भगवन्! आप मूर्ति-पूजा का खंडन छोड़ दें। यह राजनीति के सर्वसंग्रह सिद्धान्त के प्रतिकूल है। यदि आप ऊपर की बातें स्वीकार कर लें तो एकलिंग महादेव के महन्त की गद्दी आपकी है। वैसे तो राज्य भी उसी मन्दिर के समर्पित है, परन्तु मन्दिर के नाम जो राज्य का भाग लगा हुआ है उसकी लाखों की आय है। इतना भारी ऐश्वर्य आपका हो जाएगा। सारे राज्य के आप गुरु माने जाएंगे।” राणाजी की प्रार्थना श्रवण करते ही स्वामीजी महाराज बोले, “आप मुझे प्रलोभन दिखाकर परमात्मदेव से विमुख किया चाहते हैं? उसकी आज्ञा मंग करना चाहते हैं? राणाजी! आपके जिस छोटे-से राज्य और मन्दिर से मैं एक दौड़ लगा कर बाहर जा सकता हूं वह मुझे अनन्त ईश्वर की आज्ञा मंग करने के लिए विवश नहीं कर सकता। परमात्म देव के परम प्रेम के सामने धन और ऐश्वर्य अति तुच्छ है। मुझे ऐसे शब्द कहने का फिर कभी साहस न कीजिएगा।”

ये उदाहरण उन तीन महापुरुषों के हैं जो अध्यात्मवाद की चरम सीमा तक पहुंच चुके थे। इस सीमा तक तो विरले ही व्यक्ति पहुंचते हैं। हां जीवन के कार्यों को करते हुए आत्म-चिन्तन और परमात्म-चिन्तन करना यह भी अध्यात्मवाद का ही एक रूप है। इसी मार्ग के विषय में वेद कहता है कि जिस रास्ते से तू पहले नहीं गया है, उस मार्ग को कहता हूं। इसी मार्ग के विषय में कहा गया है ‘अभयं ते अर्वाक्’ अर्थात् इस ओर अभय है। वेद की भाषा में अध्यात्मवाद का मार्ग निर्भयता का मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले को कोई भय नहीं है। यह आपत्ति रहित है। इसमें मान और शंका की हानि नहीं है। यह निर्भयता का मार्ग है। भर्तृहरिजी महाराज के शब्दों में—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयम् ।

मौने दैन्य भयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥

शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

अर्थात् विषय भोगों को भोगने में रोग का भय है। उच्च कुल का होने में कुल से गिरने का भय है। धन के अधिक होने में राजा का भय है कि कहीं छीन न ले। चुप रहने में दीनता का भय है। अधिक बल होने पर शत्रु का भय है। सुन्दरता को बुढ़ापे का भय है। शास्त्र-ज्ञान में पराजय का भय है। गुणों में दुष्ट का भय है। शरीर को मृत्यु का भय है। संसार में सब वस्तुओं पर भय छाया हुआ है। केवल एक वैराग्य ही है जो भयरहित है।

यह वैराग्य क्या है? महर्षि पञ्चजलि महाराज ने वैराग्य की परिभाषा करते हुए योगशास्त्र में लिखा है।

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् अर्थात् देखे और सुने हुए विषयों की तृष्णा का भी मन में न रहना वैराग्य कहलाता है।

जब सांसारिक विषयों की मन में इच्छा भी नहीं रहती तो मनुष्य का ध्यान परमात्मा की ओर चलता है। यही वैराग्य मनुष्य के लिए निर्भयता का कारण बन जाता है। यह बहुत ऊंची अवस्था है। इस तक तो सभी व्यक्ति नहीं पहुँच सकते। हाँ, यह सोचकर कि संसार के सभी पदार्थ नाशवान् हैं और हम से एक न एक दिन छूटने वाला है, यदि व्यक्ति कुछ वैराग्य-भाव मन में धारण करते हुए प्रातः सायं ईश्वर का चिन्तन करता रहे तो व्यक्ति निर्भयता की ओर अग्रसर होता रहता है।

विश्व के धार्मिक इतिहास के ये उदाहरण उन तीन महापुरुषों के हैं जिन्होंने आध्यात्मिकता को ही जीवन का सर्वस्व स्वीकार किया और सांसारिक प्रलोभनों को ठुकरा दिया। ऐसे व्यक्तियों के विल्कुल विपरीत वे व्यक्ति हैं जिन्होंने अध्यात्मवाद का सर्वथा त्याग करके भौतिकवाद के मार्ग को अपनाया। इन लोगों ने केवल प्रकृति और उसके परिणाम संसार को ही सत्य स्वीकार किया। आँखें जिसे देखती है, वही सत्य है। कान जिसे सुनते हैं, वही सत्य है। नासिका जिसे सूँघती है, वही सत्य है। जिह्वा जिसका रस लेती है वही सत्य है। त्वंचा जिसका स्पर्श करती है वही सत्य है। इसके विपरीत जो कुछ आँखों से दिखाई नहीं देता, जो कानों से सुनाई नहीं देता, जो नासिका से सूँघा नहीं जाता, जिसका जिह्वा से रस नहीं लिया जाता—वह सब असत्य है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

इसी आधार पर उन्होंने आत्मतत्त्व को ठुकरा दिया। उनकी परिभाषा केवल सांसारिक पदार्थों पर ठीक उतरती है। वे संसार और सांसारिक पदार्थों को ही

सत्य मानते हैं। भूमि, सम्पत्ति, धन, स्त्री और सन्तान तक ही इनकी दृष्टि रहती है। केवल शरीर, केवल दृश्यमान जगत और केवल वर्तमान जीवन ही उनके निकट परम सत्य होते हैं।

प्रश्न यह है कि मनुष्य भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाता क्यों है? कठोपनिषद् के ऋषि ने इस बात का विवेचन करते हुए लिखा है...

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भू
तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमक्ष
दावृत्त चक्षुरमृतन्वमिच्छन् ॥

अपनी ही सत्ता से स्थित रहने वाले परमात्मा ने इन्द्रियों को बाह्य विषयों पर गिरने वाला किया है, इसलिए मनुष्य बाह्य विषयों को देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। कोई ध्यानशील और विवेकी पुरुष मोक्ष की इच्छा करता हुआ हृदयाकाशस्थ आत्मा को देखता है।

इन्द्रियां बाह्य विषयों पर गिरती हैं अतः कम गहराई में जाने वाले व्यक्ति बाह्य पदार्थों को ही सब कुछ समझ लेते हैं। बाह्य पदार्थों को ही सब कुछ समझना भौतिकवाद कहलाता है। इन्द्रियों के पीछे चलने वाले व्यक्ति आत्म-दर्शन की ओर चल ही नहीं सकते, वे बाह्य विषयों की ओर ही चलते हैं। बाह्य विषयों के पीछे दौड़ने वाले व्यक्तियों के लिए उपनिषद्कार ने कहा है—

पराचः कामाननुयन्ति बाला
स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥

जो अज्ञानी पुरुष बाह्य विषयों के पीछे दौड़ते हैं वे मृत्यु के फैले हुए बन्धन को प्राप्त होते हैं और ज्ञानी पुरुष निश्चय मोक्ष को जानकर संसार के अनित्य पदार्थों में सुख को नहीं चाहते।

बाह्य पदार्थों के पीछे दौड़ने वाले भौतिकवादियों का एक जगत्प्रसिद्ध नारा है “खाओ, पिओ और मौज उड़ाओ।” संसार के अध्यात्मवादियों के सैद्धान्तिक पक्ष में भले ही मतभेद हो परन्तु भौतिकवादियों के इस नारे में कोई मतभेद नहीं है। ऐसा दृष्टिकोण रखने वालों की संसार के प्रत्येक देश में कुछ-न-कुछ संख्या पाई जाती है। अब हम भौतिकवादियों के इस गुरु-मन्त्र की समीक्षा करेंगे।

खाना जीवन का साध्य है कि साधन हैं, इस बात पर विवेचन करना आवश्यक है। मनुष्य एक मननशील प्राणी है। इस नाते से उसे विचार करना ही होगा कि क्या जीवन का लक्ष्य केवल खाना ही है? यदि जीवन का लक्ष्य केवल खाना ही है तो पशु और मनुष्य में क्या अन्तर है? योगी और भोगी के जीवन में बस यह एक बहुत बड़ा अन्तर होता है। खाए बिना दोनों ही जीवित नहीं रह सकते। योगी भी खाता है और भोगी भी खाता है परन्तु भोगी खाने को जीवन का साधन समझता है। योगी इसलिए खाता है कि जी सके और आत्म-चिन्तन और परमात्म-चिन्तन कर सके। भोगी इसलिए खाता है क्योंकि खाना ही उसके जीवन का लक्ष्य है और वह जीता ही खाने के लिए है। फारसी के कवि शेखसादी ने कहा है —

खुर्दैन बराए जोस्तनो जिफ्र कर्दन अस्त ।

तू मोतकिद कि जोस्तन अज बहरे खुर्दन अस्त ।

खाया इसलिए जाता है कि जिया जा सके और ईश्वर का नाम लिया जा सके परन्तु तू ने तो इस बात को अपना लिया है कि जीना केवल खाने के लिए है।

मनुष्य खाने में भी आगे नहीं है। पशु उससे कई गुणा अधिक खाते हैं। वह खाने में पशुओं का मुकाबला नहीं कर सकता। यदि खाने का अर्थ यही है कि मांसाहार किया जाए तो यह मनुष्यता के धर्म के विपरीत है क्योंकि कोई अपने बच्चों का मांस तो किसी को खिलाना नहीं चाहता परन्तु भेड़ और बकरी के बच्चों का मांस खाना चाहता है।

यह खाने का विवेचन हुआ। अब हम पीने का विवेचन करते हैं। पीना भी मनुष्य के जीवन का आधार है। योगी भी पीता है और भोगी भी पीता है परन्तु दोनों के पीने का अन्तर है। पानी, लस्सी और शर्बत तक तो दोनों समान हैं परन्तु भौतिकवादी के पीने का अभिप्राय है शराब पीना। जब मनुष्य शराब पीने का निश्चय कर लेता है तो तभी उसकी बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है। जब बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है तो आगे विनाश और हानि है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। जिस पदार्थ के पीने से शारीरिक हानि होती हो, मानसिक बेचैनी बढ़ती हो, बौद्धिक अपवित्रता बढ़ती हो, पारिवारिक अशान्ति बढ़ती हो, आर्थिक हानि होती हो और आत्मिक पतन होता हो उसका सेवन क्या बुद्धिमत्ता है? मनुष्य समझता है कि वह शराब को पी रहा है परन्तु वास्तव में शराब उसे पीती है। जिस यूरोप में शराब बहुत चलती है उसी के एक चिन्तक शेक्सपियर ने कहा है “शराब का एक प्याला मनुष्य को बुद्धिहीन बनाता है, दूसरा प्याला पागल बना देता है और तीसरा डूबो देता है

अर्थात् चेतनाहीन बना देता है।" सेनेका ने कहा है, "शराब पीना और कुछ नहीं, केवल अपनी इच्छा से पागल बनना है।" जब व्यक्ति शराब पीता है तो उसके बहकने से, उसके शोर-शराबे से, उसकी कुचेष्टाओं से, उसकी बकवास से, उसकी कामवासना के भड़कने से यह साक्षात् अनुभव होने लगता है कि इसमें मनुष्यता नहीं रही अपितु पशुता ने डेरा जमा लिया है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

**मैं उन्होंने पी अब उनके पास क्योंकर दिल लगे
जानवर इक रह गया, इन्सान रुखसत हो गया।**

यह तो शराब पीने का विवेचन हुआ अब "मौज उड़ाओ" का विवेचन कर लें। परमात्मा ने मनुष्य को काम की प्रवृत्ति दी केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए। ऋषियों ने मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति के लिए इस पर भी नियन्त्रण लगाया कि महीने में केवल एक बार ही पत्नी को वीर्यदान किया जाए। कुसंगति के कारण मनुष्य के मस्तिष्क में कुविचार पनपते हैं। इन्हीं कुविचारों के प्रभाव में, वीर्य-शक्ति की महत्ता को न समझते हुए, मनुष्य क्षणिक सुख के लिए समय से पहले भी वीर्य का नाश करता रहता है और समय निकल जाने पर सिर घुनता है। गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी ऋषियों की मर्यादा का पालन तो विरले ही करते हैं। इन दो स्थितियों से भिन्न एक स्थिति और भी है। वह है परस्त्रीगमन और वेश्यावृत्ति की। भौतिकवादियों की दृष्टि में 'मौज उड़ाने' का संकेत इसी तीसरी स्थिति की ओर है।

यह तीसरा मार्ग और गृहस्थ में भी वीर्य का अतिनाश मनुष्य के पतन का कारण बनते हैं। इसे ही विषयासक्ति का नाम दिया गया है।" महाभारतकार ने कहा है—

अर्थानामोश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः

इन्द्रियाणामनैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः ॥

जो बहुत धनवान् होकर भी इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रखता वह इन्द्रियों पर अधिकार न रखने के कारण ही ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है।

प्रमदा मदिरा लक्ष्मीर्विज्ञेया त्रिविधा सुरा

दृष्ट्वैवोन्मादयत्येका पीता चान्याति संचयात् ॥

सुरा (शराब) तीन प्रकार की होती है—स्त्री, मदिरा और लक्ष्मी। पहली तो देखने मात्र से उन्मत्त बना देती है, दूसरी पीने पर और तीसरी अतिशय संचय से।

घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्

तस्माद्घृतं च बलिं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः

स्त्री धी से भरे हुए घड़े के समान है और पुरुष अंगार के समान है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष कभी धी और आग को इकट्ठा न रखे, क्योंकि दोनों के संयोग से ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है।

यत्र श्रीयौवनं वापि परदारोऽपि तिष्ठति
तत्र सर्वान्धता नित्यं मूखत्वं चापि जायते ॥

जहाँ धन है, यौवन है तथा परस्त्री भी है, वहाँ सदा सभी अन्धे और मूख बने रहते हैं।

विषयासक्तचित्तानां गुणः को वा न नश्यति ।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजातं न सत्यवाक् ॥

विषयासक्त मनुष्यों के कौन-से गुण नष्ट नहीं होते। उनमें न विद्वत्ता रहती है, न स्वाभिमान रहता है और न सत्य वचन रहता है।

महात्मा बुद्ध ने धम्मपद में कहा है कि जो व्यक्ति परस्त्रीगमन तथा मद्य-पान करता है— वह इसी लोक में अपनी जड़ खोदता है।

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः
नेन्धनेन जयेदर्गिणं न पानेन सुरां जयेत् ॥

सोकर नींद को जीतने का प्रयत्न न करे, भोग द्वारा स्त्री को वश में करने का प्रयत्न न करे, ईर्ष्या से आग को बुझाने का प्रयत्न न करे और शराब पीकर शराब के दुर्व्यसन को शान्त करने का प्रयत्न न करे।

एक दिन महाराजा भोज ने अपने दरबारियों से पूछा कि नष्ट होने वाले की क्या गति होती है? कोई दरबारी उत्तर न दे सका। राजा ने कविवर कालिदास से पूछा तो वे भी मौन रहे और कहने लगे कि कल इसका उत्तर दिया जाएगा। महाराजा भोज प्रतिदिन प्रातः भ्रमण करने जाते थे। जिस मार्ग से वे भ्रमण के लिए जाते थे, उस मार्ग से लौटते समय उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। उन्होंने देखा कि एक संन्यासी खड़ा है। वह भिक्षा-पात्र लिए हुए है और उसमें मांस के टुकड़े रखे हुए हैं। महाराजा भोज को बहुत आश्चर्य हुआ कि वे प्रातःकाल क्या अद्भुत दृश्य देख रहे हैं। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर पूछा

भिक्षो ! मांसनिषेवनं प्रकुरुषे ?

अरे भिक्षु तू संन्यासी होकर मांस का सेवन करता है? तो साधु ने उत्तर दिया—

कि तेन मद्यं विना

अर्थात् शराब पिए बिना मांस खाने का क्या आनन्द ? इस पर और चकित होकर महाराज ने पूछा

मद्यं चापि तव प्रियम्

कि क्या शराब भी तुझे प्यारी है तो उस साधु ने कहा

प्रियमहो वारांगनाभिः सह

अरे केवल शराब ही मुझे प्रिय नहीं है अपितु वेश्यावृत्ति के साथ शराब प्यारी है । महाराज भोज को बड़ा दुःख हुआ उनके राज्य में ऐसा भी संन्यासी रहता है कि जिसे मांस के साथ शराब और शराब के साथ वेश्या-वृत्ति में भी रुचि हो । वे और चकित हाँकर पूछने लगे—

तासामर्थरुचिः कुतस्तव धनम् ?

अरे वे वेश्याएं तो धन की इच्छुक होती हैं । तेरे पास धन नहीं है तू तो भिक्षुक ठहरा । तो साधु ने उत्तर दिया

द्युतेन चौर्येण वा

कि मैं पैसा जुआ खेल कर और चोरी करके प्राप्त कर लेता हूँ । इस पर महाराजा भोज पूछने लगे

चौर्यद्युत परिग्रहोऽपि भवताः

क्या तुझे चोरी और जुआ भी प्रिय है ? इस पर उस साधु ने कहा

नष्टस्य कान्या गतिः

जो व्यक्ति नष्ट होना चाहता हो, उसकी क्या गति होती है ? महाराजा भोज समझ गए कि यह कालिदास है और कल के प्रश्न का उत्तर दे रहा है । इसलिए यह भौतिकवाद का मार्ग नष्ट होने का मार्ग है । उपनिषद् ने इस मार्ग को अन्धकार का मार्ग कहा है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितश्मन्यमानाः

दन्दम्यमानाः परियन्ति मूढा श्रन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

जो भौतिकवाद के मार्ग में पड़े हुए हैं, वे मानो अज्ञान में पड़े हुए हैं और अपने आपको धीर और विद्वान् समझते हैं । वे मूर्ख अन्धकार में भटकते हैं और अन्ये के पीछे अन्धों के समान चलते हैं ।

मनुष्य को भौतिकवाद के रास्ते से बचने के लिए बहुत सावधानी की आवश्यकता है ।

कुरंग मातंग पतंग भृगा
मीना हता पंचभिरेव पंच
एकः प्रयादी स कथं न हन्यते
यः सेवते पंचभिरेव पंच ।

हरिण, हाथी, पतंग, भंवरा और मछली एक-एक दुर्गुण रखते हैं इसी एक-एक दुर्गुण के कारण उनका विनाश हो जाता है। हरिण को शब्द से बड़ा प्रेम होता है। शब्द से अभिप्राय है संगीत अथवा कानों को प्रिय लगने वाली ध्वनि। जो कर्ण मधुर शब्दों का दास होता है, वह विनाश को प्राप्त होता है। कवि ने हरिण के माध्यम से इस बात को समझाने का प्रयत्न किया है। हरिण को ध्वनि बड़ी प्रिय होती है। शिकारी जब उसे पकड़ना चाहते हैं तो ढोलों को बड़ी तीव्रता के साथ बजाते हैं। ढोलों की आवाज हरिण को बड़ी प्यारी लगती है। वह उस धुन को सुनता हुआ उसकी ओर बड़ी तीव्र गति से भागता है। इस प्रकार वह शिकारियों के चंगुल में फंस जाता है। शब्द की दासता उसको स्वतन्त्र से परतन्त्र बना देती है और इसी परतन्त्रता के कारण उसे जीवन से भी हाथ धोने पड़ते हैं। हाथी त्वचा द्वारा स्पर्श-सुख का बहुत इच्छुक होता है। उसकी यह दुर्बलता उसे शिकारियों का परतन्त्र बना देती है। शिकारी एक बड़ा गढ़ा खोद कर उसको लकड़ी से ढांप देते हैं और उसके ऊपर घास-फूस की एक हथनी बना देते हैं। हाथी जब उस हथनी को देखता है तो स्पर्श-सुख के लिए उसकी ओर लपकता है। दुर्बल लकड़ियाँ उसके बोझ को सहन नहीं कर पातीं और वह गढ़े में गिर जाता है। शिकारी उसको अपने वश में कर लेते हैं। इस प्रकार स्पर्श-सुख की इच्छा उसे मनुष्य का दास बना देती है। पतंगे (परवाने) की रूप में बड़ी आसक्ति होती है। वह दीपक (शमा) की आसक्ति दिखाता है। वह दीपक के चारों ओर मंडराता है और इतनी तल्लीनता से मंडराता है कि उसे अपने जीवन की भी सुध-बुध नहीं रहती। उसे यह भी ध्यान नहीं रहता कि उसका जीवन सुरक्षित रहेगा। इसी रूप के उन्माद में वह अपने जीवन को स्वाहा कर देता है। रूप की आसक्ति उसे मिट्टी में मिला देती है। भंवरा गन्ध का बड़ा लोभी होता है। वह कमल की गन्ध लेने के लिए कमल के फूल में बैठ जाता है और उसकी सुगन्धि में मस्त हो जाता है। उसकी इस मस्ती का चित्र बड़े सुन्दर ढंग से किसी कवि ने खींचा है।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्री ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥

जब भंवरा कमल के फूल में सुगन्धि लेने के लिए बैठ जाता है वह उस सुगन्ध में इतना मस्त हो जाता है कि सायंकाल का समय आ जाता है। कमल की पंखुड़ियां मुंद जाती हैं। जब उसकी मस्ती की नींद टूटती है तो वह बाहर निकलना चाहता है तो देखता है कि कमल की पंखुड़ियां मुंद चुकी हैं और वह उनमें वन्दी हो गया है। वह परेशान हो जाता है, परन्तु अब क्या करे? वह अपने मन को सान्त्वना देने के लिए कहता है 'रात्रि विदा हो जाएगी। सुन्दर प्रभात बेला आएगी सूर्य उदय होगा और कमल खिल जाएगा। इस प्रकार कमल के अन्दर वन्द भंवरा सोचता है परन्तु हाय होता क्या है? प्रभात काल के समय एक हाथी सरोवर में आता है और अपनी सूंड से कमल को तोड़ देता है और कमल को खा जाता है। इस प्रकार भंवरे का विनाश हो जाता है। मछली नाना प्रकार के रसों की बड़ी शौकीन होती है। इसलिए उसे कई प्रकार के पदार्थों को खोज होती है। मछेरा उसकी इस दुर्बलता को जानता है। वह मछली पकड़ने वाले कांटे के साथ स्वादिष्ट पदार्थों को लगा देता है। वह रस की मतवाली मछली उस पदार्थ को खाने के लिए अपने मुंह को उसकी ओर करती है। उस वस्तु को खाते-खाते उसकी जिह्वा में वह तीखा कांटा चुभ जाता है। ऊपर से डोरी हिलती है। मछेरा समझ जाता है कि मछली फंस गई है। वह डोर को पानी से बाहर निकालता है। कांटे में विधी हुई जिह्वा वाली मछली भी बाहर आ जाती है। वह भूमि पर डाल दी जाती है और पानी के बिना वह तड़पने लगती है और तड़प-तड़प कर प्राण दे देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हरिण शब्द में, हाथी स्पर्श में, पतंगा रूप में, भंवरा गन्ध में और मछली रस में अत्यधिक आसक्त होने के कारण ही विनाश को प्राप्त होते हैं।

उन जीवों में तो एक-एक दोष था और वे विनाश को प्राप्त हुए परन्तु जिस मनुष्य में ये पांचों दोष पाए जाते हैं उसके वचने की क्या आशा है? इस तथ्य को कविवर सुन्दरदासजी ने सुन्दर शब्दों में उपस्थित किया है।

**गज श्रली मीन पतंग मृग इक इक दोष विनाश
जा के तन पांचों वसें ताकि कैसी आश।**

मनुष्य के लिए यह विकट स्थिति तो है ही परन्तु इसके साथ एक और बात भी है कि उक्त पांचों जीवों को पता नहीं कि इन पांचों विषयों की आसक्ति का क्या परिणाम होगा, इसलिए वे विनाश को प्राप्त होते हैं। परन्तु मनुष्य को तो पता है। उसका विवेक जागृत है! वह जानते हुए भी इन पांचों विषयों के वशीभूत होकर विनाश को प्राप्त होता है। भर्तृहरिजी महाराज ने इसका चित्रण सुन्दर ढंग से किया है :—

**अजानन्दाहात्म्यं पततु शलभो दीप दहने
स मीनोऽप्यज्ञानाद्दण्डिशयुतमश्नातु पिशितम् ।**

**विजानन्तोऽप्येतान्वयमिह विपञ्जालजटिला
न्त मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥**

पतंगा अज्ञानवश दीपक की ली पर गिरकर अपने को भस्म कर लेता है। इसी प्रकार मछली भी कांटे पर मुंह चला कर अपने प्राण खो देती है, क्योंकि वह उससे अपने प्राण-नाश की बात नहीं जानती। परन्तु हम लोग तो अच्छी तरह जान-बूझ कर भी विपद्-मूलक विषयों की अभिलाषा नहीं त्यागते। मोह की कितनी गहरी महिमा है।

प्रश्न यह है कि जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द आदि विषयों की अधिक से अधिक तृप्ति करते हैं, क्या उनकी तृष्णा शान्त हो जाती है? अनुभव यह सिद्ध करता है कि इन्द्रियां तो शिथिल हो जाती हैं परन्तु तृष्णा शान्त नहीं होती। भर्तृहरिजी महाराज ने इस तथ्य को इस प्रकार उपस्थित किया है :—

**भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ता
कालो न यातो वयमेव याता स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णः ।**

हमने भोग क्या भोगे, हम स्वयं ही भुगत कर रह गए। हमने तप क्या तपा, हम स्वयं ही तप गए। समय समाप्त नहीं हुआ, हम ही समाप्त हो गए। तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई, हम ही बूढ़े हो गए। अतः मनुष्य की तृष्णा शान्त नहीं होती। वह विषयों की ओर उसे और प्रेरित करती है।

बलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः

गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ।

मुख पर झुरियां छा गई हैं, शिर के बाल सफेद हो गए हैं। शरीर के अंग शिथिल हो रहे हैं परन्तु तृष्णा बढ़ती जा रही है। इसी प्रकार सुभाषितावली में कहा गया है—

यौवनं जरया ग्रस्तमारोग्यं व्याधिभिर्हृतम्

जोवितं मृत्युरभ्येति तृष्णैका निरुपद्रवा ॥

जवानी बुढ़ापे से, आरोग्यता व्याधियों से और जीवन मृत्यु से ग्रसित है, पर तृष्णा को किसी उपद्रव का डर नहीं। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सुन्दरदासजी ने बहुत ही सुन्दर कहा है—

१. भौतिकवाद के मार्ग पर चलने से एक यह समस्या भौतिकवादी के सम्मुख उपस्थित होती है।

पेट पसार दियो जित ही तित,
 तै यह भूख किती इक थापी ।
 ओर न छोर कछू नहि आवत,
 में बहु भांति भली विधि मापी ।
 देखत देह भये सब जीरन,
 तू नित नूतन आहि अघापी ।
 सुन्दर तोहि सदा समुभावत,
 हे तृष्णा ! अजहूं नहि धापी ।

एक अन्य कवि ने लिखा है—

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः
 जीर्यन्ते चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायते ॥

जीर्ण होने से बाल जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से दांत जीर्ण हो जाते हैं,
 जीर्ण होने से आंख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं, पर एक तृष्णा तरुण
 होती जाती है ।

श्री शंकराचार्यजी महाराज ने 'मोहमुद्गर' में ठीक ही कहा है—

अंगं गलितं पलितं मुण्डं दन्त विहीनं जातं तुण्डम्
 क्ररधृतकम्पित शोभित दण्डं तदपि न सुञ्चत्याशाभाण्डम् ।

अंग शिथिल हो गए हैं, बुढ़ापे में सिर सन हो गया है। मुंह में दांत नहीं
 रहे हैं, हाथ में ली हुई लकड़ी के समान शरीर कांयता है, तो भी मनुष्य आशा रूपी
 पात्र को नहीं त्यागता है ।

'प्रश्नोत्तर माला' में श्री शंकराचार्य ने लिखा है—

तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ?

पूछा कि स्वर्ग क्या है ? उत्तर दिया कि तृष्णा का नाश ।

मनु महाराज भी जो जीवन का अच्छा अनुभव प्राप्त किए हुए थे, इसी तथ्य
 की ओर संकेत करते हैं ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति

हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाऽभिवर्धते ।

कामनाओं का उपभोग करने से कामनाएं कभी शान्त नहीं हो जातीं जिस

प्रकार अग्नि में हवि डालने से अग्नि और भड़कती है ऐसे ही कामनाओं का उपभोग करने से कामनाएं और बढ़ती हैं।

सौभरि ने जीवन भर विषयों का उपभोग किया। बहुत भोगों का उपभोग करने के पश्चात् भी राग की शान्ति नहीं हुई। सांख्य शास्त्र के रचयिता महर्षि कपिल ने अपने शास्त्र में इस तथ्य को दोहराया है।

न भोगाद्वागशान्तिर्मुनिवत् ।

अन्त में सौभरि ने कहा

**श्रामृत्यो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य
मनोरथासक्ति परस्यचित्तं न जायते वै परमार्थसंगि ।**

आज मुझे इस बात का ज्ञान हुआ है कि मृत्यु तक मनोरथों का अन्त नहीं है और जो चित्त मनोरथों में लगा हुआ है, उसमें विज्ञान का उदय कभी नहीं हो सकता।

कविवर सुन्दरदासजी ने ऐसा ही कहा है—

नैनन की पल ही पल में, छन आधि घरी घटिका जु गई है
जाम गयो जुग जाम गयो, पुनि सांझ गई तब रात भई है।
आज गई अरु काल गई, परसों तरसों कछु और हुई है
सुन्दर ऐसे ही आयु गई, तृषना दिन ही दिन होत नई है।

महापुरुषों के दिए उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया है कि विषयों के उपभोग की कोई सीमा है। कहीं न कहीं विषयों को रोक लगानी पड़ती है।

वैदिक संस्कृति कहती है कि तुम सांसारिक पदार्थों का उपभोग तो करो परन्तु अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है, इसका सदा ध्यान रखो। वैदिक संस्कृति समन्वय-प्रधान संस्कृति है। इसमें इहलोक का परलोक के साथ, प्रवृत्ति का निवृत्ति के साथ, भोग का मोक्ष के साथ समन्वय स्थापित किया गया है। केवल लौकिक उन्नति मनुष्य जीवन का लक्ष्य नहीं और केवल पारलौकिक उन्नति भी मनुष्य का लक्ष्य नहीं। इन दोनों के समन्वय में ही मनुष्य-जीवन की सफलता है। हाँ संसार के पदार्थ साधन है तो मोक्ष साध्य है। प्रकृति और उससे उत्पन्न होने वाले संसार का लक्ष्य भोग और मोक्ष दोनों हैं। आचार्य कपिल ने सांख्यशास्त्र में कहा है—

विमुक्त मोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य ।

२:१

आत्मा के लिए प्रकृति और संसार का लक्ष्य भोग और मोक्ष दोनों ही हैं।

आत्मा को चाहिए कि वह संसार के पदार्थों का उपभोग भी करे और मोक्ष भी प्राप्त करे। योगदर्शनकार महर्षि पतञ्जलि ने कहा -

प्रकाश क्रिया स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मक भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।

प्रकृति जिसमें सत्व गुण प्रधान, रजो गुण प्रधान और तमोगुण प्रधान परमाणु है और जो पंच महाभूतों और इन्द्रियों का कारण है, वह और उसका यह संसार भोग और मोक्ष के लिए है। आत्मा के लिए यह संसार साधन है साध्य नहीं है। उसका लक्ष्य इसी में उलझ के रह जाना ही नहीं है।

**न तू जमी-के लिए है न आसमाँ के लिए
जहां है तेरे लिए तू नहीं जहां के लिए ।**

संसार के लोग साधन को ही साध्य समझ बैठे हैं। संसार के पदार्थों में ही मस्त हो गए हैं। इन्हीं को ही साध्य समझ बैठे हैं। भर्तृहरि जी महाराज ने उन पर दुःख व्यक्त करते हुए कहा है—

**व्याघ्रीव जरा तिष्ठति परितर्जयन्ती ।
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्
आयुः परिलवति भिन्न घटादिवाग्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ।**

वृद्धावस्था भयंकर बाघिनी की तरह सामने खड़ी है। रोग शत्रुओं की तरह आक्रमण कर रहे हैं, आयु फूटे हुए घड़े से पानी की तरह निकली जा रही है। आश्चर्य की बात है, फिर भी लोग वही काम करते हैं, जिससे उनका अनिष्ट हो।

उन्होंने संसार के लोगों को चेतावनी देते हुए कहा है—

**आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम्
व्यापारैर्बहुकार्यं भारं गुरुभिः कालो न विज्ञायते
दृष्ट्वा जन्मजरा विपत्तिं मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरामुन्मत्तं भूतं जगत् ।**

सूर्य के उदय और अस्त के साथ मनुष्यों की जिन्दगी रोज घटती जाती है। समय भागता जाता है, पर कारोबार में मशगूल रहने के कारण, यह भागता हुआ नहीं दीखता। लोगों को पैदा होते, बूढ़े होते और मरते देखकर भी मन में भय नहीं होता। इसी से मालूम होता है कि संसार मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा (शराब) के नशे में मतवाला हो रहा है।

वेद कहता है कि हे मनुष्य तू इस भौतिकवाद के रास्ते पर मत चल। यह रास्ता भयंकर है। तुझे मैं अध्यात्मवाद के मार्ग से ले चलता हूँ। वेद कहता है कि भौतिकवाद का मार्ग अन्धकार का मार्ग है तू इस पर मत चल। भौतिकवाद की ओर भय है और अध्यात्मवाद की ओर अभय।

अध्यात्मवाद का मार्ग यह है कि खाओ, पिओ और मौज उड़ाओ के मार्ग से पृथक् रहकर आत्मा और परमात्मा की सत्ता में विश्वास रखा जाए और योगाभ्यास के लिए कुछ समय निकाल कर, इन्द्रियों को बाह्य पदार्थों से रोककर और मन में किसी प्रकार की विचार न आने देकर परमात्मा का ध्यान किया जाए। इस निर्विचार अवस्था का अवधि को जितना बढ़ाया जा सके, बढ़ाया जाए। इस विधि में क्रमशः इन्द्रियों का प्रत्यक्षीकरण, फिर अन्तःकरण का और तत्पश्चात् आत्मा का अनुभव और पुनः परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इस मार्ग पर चलने से एक दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है जिसे अभ्यासी स्वयं ही जानता है, दूसरा कोई नहीं।

समाधि निर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तःकरणेन गृह्यते।

मैत्रेयी उप ६:३४

वेद इसी मार्गको निर्भय एवं ज्योति का मार्ग बताता है। इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा मनुष्य को देता है। मनुष्य जीवन का यह अहोभाग्य है कि यदि वह इस मार्ग पर चल सके।

स्वस्थ और सुन्दर आंखों के लिए

भीमसेनी काजल

आंखों को नीरोग और सुन्दर बनाता है।

मुरारी ब्रदर्स

जी०-७, माडल टाऊन, दिल्ली-११०००७

--वीरेन्द्र पाल

स्वाधीनता-संग्राम में आर्य संन्यासियों का योगदान

‘शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते ।’ शस्त्रों से ही राष्ट्र की रक्षा कर शास्त्र चिन्तन में प्रवृत्त होना संभव है । वस्तुतः राष्ट्र की सुरक्षा ही आध्यात्मिकता की दिशा में प्रथम पग है । केवल ब्राह्म-बल को सम्बल बनाकर ही कोई राष्ट्र रक्षित नहीं हो सकता । उसके लिए शस्त्र-बल भी अनिवार्य है । वैदिक नीति के इस दिशा निर्देशक सूत्र को आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भली भाँति हृदयंगम किया था और अपने अनुयायियों को भी इस तथ्य से भली भाँति अवगत कराया था । उन्होंने विदेशी दासता के शूल को अनुभव कर उससे मुक्ति को ही वैदिक धर्म के पुनरुद्धार का मूल माना था ।

आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती की आयु १८५७ में ब्रिटिश राज्यसत्ता के विरुद्ध हुए प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय ३३ वर्ष की थी उन्होंने इस महान युद्ध की असफलता के कारणों का भी सांगोपांग अध्ययन और विवेचन किया था । उन्होंने अपने महान ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें सम्मुल्लास में संवत् १९१४, (सन् १८५७) की

एक घटना का उल्लेख भी किया है । जिसमें अंग्रेजों द्वारा रणछोड़ जी के मन्दिर पर गोलाबारी और कच्छ काठियावाड़ के बाघेरो द्वारा अंग्रेजी सेना के मुकाबले का उल्लेख है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि युवक संन्यासी दयानन्द ने इस घटना को स्वयं समरांगण में देखा था और यदि ऐसा न हुआ हो तो भी उसका संपुष्ट विवरण तो उन्होंने अवश्य ही सुना होगा । यद्यपि महर्षि दयानन्द के उन दिनों के जीवन वृत्त का कोई अधिकृत विवरण उपलब्ध नहीं है और स्वयं भी उस अवधि के अपने जीवनवृत्त के सम्बन्ध में पूर्णतः मौन साध रहे, किन्तु पिछले वर्षों में हुए कतिपय अनुसंधानों से ऐसे कुछ प्रमाण प्राप्त हुए बताए जाते हैं कि १८५७ के क्रांतिदूतों से महर्षि दयानन्द का सम्बन्ध था ।

यह तथ्य तो सूर्य के प्रकाश के समान असंदिग्ध है कि दयानन्द ही पिछली शताब्दी के प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने विदेशों के श्रेष्ठतम शासन से भी स्वराज्य को श्रेयस्कर बताया था ।

देव दयानन्द ने ही वेदमन्त्रों की राज-

नीति एवं विज्ञानपरक व्याख्या कर आर्य जाति को उसकी दासता के काल में ही एक नव आलोक प्रदान किया और आर्यसमाज के संगठन को लोकतन्त्र के सिद्धान्तों पर अधिष्ठित कर एक समानान्तर सरकार का रूप प्रदान किया।

महर्षि दयानन्द पूना, कलकत्ता, रुड़की, फीरोजपुर एवम् ऐसे अन्य स्थानों पर भी अनेक बार गए जहाँ अंग्रेजों की सैनिक छावनियाँ थी। इतना ही नहीं ऐसे ही स्थानों पर उन्होंने सर्वप्रथम आर्य समाज का संगठन भी खड़ा किया।

स्वामी दयानन्द द्वारा प्रदर्शित पथ पर तन्मयता सहित अपना पग बढ़ाने वाले महात्मा मुन्शीराम, जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए भारत के स्वाधीनता संग्राम के अग्रगण्य सेनानी थे। उन्होंने उग्र राष्ट्रवाद का समर्थन तो किया ही साथ ही शिक्षा आदि के क्षेत्र में भी उन्होंने अंग्रेजों से सहयोग का सक्रिय विरोध किया। जलियाँवाला हत्याकाण्ड के बाद कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में आयोजित कराने का साहस भी स्वामी श्रद्धानन्द ने ही संजोया था तो दिल्ली में अंग्रेजों की संगीनों के आगे अपनी छाती भी उसी स्वतन्त्रता-सेनानी ने तानी थी।

हैदराबाद राज्य में स्वामी सोमानन्द (प० नरेन्द्र) ने ही राजनीतिक एवम्

सामाजिक चेतना के कारण निजाम की राज्यसत्ता को चुनौती देने का साहस प्रदर्शित किया था। १९३६ में जब हिन्दू महासभा एवम् आर्यसमाज ने निजाम की तानाशाही को चुनौती देते हुए नागरिक स्वतन्त्रताओं की मांग को लेकर सत्याग्रह का शंखनाद किया था तो उसके प्रथम सर्वाधिकारी एक आर्य संन्यासी श्री नारायण स्वामी ही थे। वह उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर के निवासी थे।

आर्य संन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द तो अपने नाम से ही स्वतन्त्रता की अलख जगाते थे तो वाणी से भी आजादी का मन्त्र फूँकते थे। शाहजहाँपुर आर्य समाज में हुतात्मा राम प्रसाद विस्मिल को क्रान्ति मंत्र की दीक्षा देने वाला भी एक आर्य संन्यासी ही था।

आर्य समाज के पुरोधाओं में से एक स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने अपनी वाणी से जनता को मानव के मूलाधिकारों के प्रति सजग किया तो अपनी समर्थ लेखनी से भी लोगों में आजादी के लिए समरांगण में उतरने की भावना को जागृत किया।

दीक्षा न लेते हुए भी संन्यासी के तुल्य जीवन व्यतीत करने वाले साधु टी. एल. वास्वानि ने सिंध में सामाजिक चेतना का जो ज्वार उभारा वह भी चिरस्मरणीय है।



राजधानी में बन रहे विशाल वेद मन्दिर
के लिए आज ही अपनी आहुति भेजिए।

प्राचीन भारत में गणित

ख्रिस्तजोड़दो के काल में भारत गणित में काफी प्रगति कर चुका था। रूसी वैज्ञानिक डा. एलेग्जेन्डर वोलोदारस्की ने इस सम्बन्ध में कुछ नये तथ्यों की और ध्यान खींचा है। डा. वोलोदारस्की सोवियत रूस के विज्ञान एवं तांत्रिकी इतिहास संस्थान से संबद्ध हैं और गणित के विशेषज्ञ हैं।

वे बताते हैं कि मुअनजोड़दो एवं हड़प्पा की खुदाई के दौरान मिले सीप से बने एक ऐसे रूलर (लंबाई मापने का सामान्य उपकरण) से पता लगता है कि उस समय भी भारत दशमलव प्रणाली से परिचित था। यह रूलर सीप की एक पतली सी चपटी पट्टी है, जिस पर ६-७ मिलीमीटर की दूरी पर चिन्ह अंकित हैं। रूलर के लिए सीप का इस्तेमाल किया जाना भी ऊंचे वैज्ञानिक बोध का प्रतीक है। सीप एक ऐसा पदार्थ है, जिसमें ताप के घटने-बढ़ने से किसी प्रकार का विरूपण (सिकुड़न, प्रसारण अथवा ऐंठन) उत्पन्न नहीं होता। रूलर की प्रामाणिकता की दृष्टि से यह गुण बहुत ही अपेक्षित है।

पुरातत्त्विय शोध से यह भी पता चला है कि उस युग में मंदिर

अथवा मंडारगृह की समस्त सामग्री पर खुदाई के द्वारा नंबर डाल दिये जाते थे, जिससे उन्हें गिनने या पहचानने में भूल की गुंजाईश नहीं रह जाती थी। इसी प्रकार वहां मिले शैल-प्रस्तर से बने तौलने के वाटों का आकार तत्कालीन भारतीयों के ज्यामितीय बोध का परिचायक है और उनके चिकनेपन से वहां के शिल्प की विकसित अवस्था का स्पष्ट आभास मिलता है। वहां से मिले बरतन और गहने आकार की दृष्टि से गोलाकार, वेलनाकार, शंक्वाकार एवं वर्गाकार हैं। इस प्रकार के विभिन्न ज्यामितीय आकारों का ज्ञान उस युग के आदमी को भी हो सकता है, इस बात से आज के अनेक वैज्ञानिकों को काफी आश्चर्य होता है।

डा. वोलोदारस्की का कहना है कि मध्ययुगीन भारत में गणित का जो विकास हुआ था, उसके बारे में काफी लिखित सामग्री आज हमें उपलब्ध है; परंतु सिंधु घाटी के सांस्कृतिक विकास की जानकारी से उस युग की वैज्ञानिक उपलब्धियों को बारीकी व गहराई के साथ समझने में सहायता मिलेगी।



गुरुकुल प्रभात आश्रम डा. भोलाभाल मेरठ की एक आवश्यक सूचना।

सभी गुरुकुल प्रेमी सज्जनों को सूचित किया जाता है, कि इस समय "गुरुकुल प्रभात आश्रम" में छात्रावास के अत्यन्तभाव के कारण नूतन ब्रह्मचारियों को प्रवेश करने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। अतः छात्रों के अभिभावकों से विनम्र निवेदन है कि, वे यहां आकर हमें विवश करने का कष्ट न करें।

- स्वामी विवेकानन्द

श्री लक्ष्मीदत्त जी की सेवा में निवेदन

—आचार्य विश्वश्रवा व्यास
एम० ए० वेदाचार्य

अपना विचार बदलें

आदरणीय भाई दीक्षित जी !

आपके पत्र द्वारा तथा जनज्ञान में प्रकाशित समाचार के द्वारा पूरा समाचार जाना । आपका यह शीघ्रता में किया निर्णय आर्यसमाज के हित में नहीं है । आपको स्मरण होगा कि जब सार्वदेशिक सभा के निर्वाचन से पूर्व उन मिनिस्टर साहब की कोठी पर सब प्रान्तों के प्रतिनिधि विचारार्थ उपस्थित हुए थे तब मैंने अपने विचार स्पष्ट कह दिये थे कि -

(१) सार्वदेशिक सभा का विशिष्ट अधिकारी प्रधान और मन्त्री किसी राजनीतिक पार्टी का सदस्य न हो अन्यथा वह राजनीतिक पार्टी यह समझ लेगी कि हमारे एक सदस्य के हाथ में सारे संसार का आर्यसमाज है ।

(२) और न ही सार्वदेशिक सभा का विशिष्ट अधिकारी प्रधान या मन्त्री वह व्यक्ति हो जो मिनिस्टरों के पीछे घूमता फिरे, उनके चरण छुए और उन्हें हाथ जोड़कर मालाएं पहनाए । ऐसी स्थिति में वे लोग यह धारणा बना लेते हैं कि हमारे चरणपूजकों के हाथ में सारे संसार का आर्यसमाज है और वह हमारा गुलाम है ?

आप मेरे विचार से सहमत थे तथा अन्य साथी भी । पर हमारी आपकी न चली और हम आप उठकर चले आए । और वही हुआ जो होता था ।

आर्यसमाज का संगठन नीचे से ऊपर को है अतः हमारा आपका कर्तव्य

है कि ऋषिभक्त आर्यजनता तक अपनी आवाज पहुंचायें । अभी बहुमत जनता में ऋषि का है । दिल्ली में बड़ी भारी शक्ति आर्यसमाज की है जब कभी आर्यसमाज के नाम पर कोई आन्दोलन चलता है, उस आन्दोलन का आर्यसमाज से कोई सम्बन्ध हो न हो दिल्ली के आर्य नर नारी रूप्यों से, कपड़ों से दूध और सामान से आन्दोलन कर्त्ताओं की गोद भर देते हैं दिल्ली के आर्यसमाजों की इस शक्ति को ऋषि के मिशन में यदि लगा दिया जाये तो अकेला दिल्ली ही सब कामों को करने में समर्थ है । दिल्ली के आर्य नर नारी आर्यसमाज को रोटरी क्लब या सेवा समिति मात्र ही समझते हैं । उन्हें सिद्धांत का ज्ञान नहीं । वे इतना ही समझते हैं कि आर्यसमाज के नाम पर जो भी काम किया जाये सब ऋषि का मिशन ही है । हमने अपने कभी इन्हें नहीं समझाया कि—

(१) यदि ऋषि दयानन्द न आते या आर्यसमाज न होता तो कौन सा काम नहीं होता ।

(२) महर्षि ने अपने माता-पिता को तड़पा-तड़पा कर मारा । क्या वे नहीं समझते थे ?

(३) महर्षि ने आजन्म ब्रह्मचर्य धारण किया जबकि पिछले सब ऋषि वालवच्चों वाले थे ।

(४) महर्षि ने वहां जाकर तप किया जहां पांडव भी गलकर मर गये थे उससे ऊपर जाकर तप किया ।

(५) योगाम्नास के द्वारा परब्रह्म के दर्शन किये ।

(६) वेदों का भाष्य किया जिस वेद भाष्य को करने की शक्ति इस युग में किसी की न थी ।

(७) इतना घोर तप क्या अकाल पीड़ित भूकम्प पीड़ित, बाढ़ पीड़ित और संभल के दंगों की चिन्ता के लिए किया ।

(८) यदि महर्षि और आर्यसमाज न होता तो क्या ये काम न होते ।

(९) वे कौन से काम हैं जिनको आर्यसमाज ही कर सकता है अन्य कोई नहीं ।

(१०) उन कामों को आर्य नर-नारियों को बताइये जिससे उनका पथ प्रदर्शन हो ।

छोड़कर भागने से काम नहीं चलेगा । क्या ऋषि के प्रति यही हमारा कर्तव्य है ? संगठन से पृथक् होकर कोई व्यक्ति काम नहीं कर सकता । संगठन की शक्ति को हाथ में रखते हुए काम सरलता से हो सकता है । यह मैं आपको बता दूँ जो व्यक्ति संगठन से अलग हो जाता है वह पहले तो सोचता है कि मैं ऋषि के मिशन का काम करूँगा पर धीरे-धीरे ठंडा हो जाता है ।

किसी से शिकायत मत करिए

संसार के प्रवाह को देखिए । जब सड़क पर कोई आदमी चलता है तब नाई प्रत्येक व्यक्ति के सिर की ओर निगाह करता है कि इसके बाल काटने काबिल हो गये हैं या नहीं और शेव के योग्य इसका मुँह है या नहीं । पर जूते का काम करने वाला व्यक्ति सड़क पर चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति का जूता देखता है सिर नहीं । वह यही देखता है कि इस का जूता पालिश होने योग्य है या नहीं और इसका जूता गाँठने लायक है या नहीं । यह मनुष्य का स्वभाव है इसमें

उसका दोष नहीं । इस प्रकार आर्यसमाज के सर्वोच्च संगठन के अधिकारी जिस योग्यता के होंगे उतनी ही अकल का काम वे कर सकते हैं । आगे उनकी अकल जा ही नहीं सकती यह दोष नहीं । यहाँ तो अधमता अपराधिनी है ।

आप जब सर्विस में थे तब समय नहीं था जब रिटायर हुए तब रूठ कर बैठ गये ।

“क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप” को स्मरण कीजिये ।

फिर देखिए

(१) महर्षि के ऊपर इन्हीं हिन्दुओं ने जिन्दा साँप फेंके ।

(२) महर्षि के ऊपर इन्हीं हिन्दुओं ने जूते फेंके ।

(३) वेश्याओं को तैयार किया झूठा लांछन लगाने को ।

(४) तलवार से काट डालने की चेष्टा की ।

(५) १७ बार जहर दिया ।

(६) और अन्त में जहर देकर अकेले को मार दिया । क्या मेरे आपके साथ यह कुछ हुआ है ।

(७) ये सब घटनायें हमारे साथ हमारे साथी करें और हम महर्षि के काम को करते अपना शरीर छोड़ें । तब हम ऋषि के शिष्य कहलाने के योग्य हो सकते हैं ।

(८) आइए हम और हमारी विचार धारा के लोग मिलकर प्रत्येक प्रांत में उन सम्मेलनों का आयोजन करें जिन में हम आर्य नर नारियों को सही मार्ग दिखा सकें ।

(९) महात्मा नारायण स्वामी के वाद आर्यसमाज नेताहीन हो गया । चाणक्य का वचन याद करिये—

अनायका विनश्यन्ति, नश्यन्ति बहु नायकाः

गुरुकुल महाविद्यालय रुद्रपुर तिलहर (शाहजहांपुर)

गुरुकुल का नवीन शिक्षा सत्र जुलाई से प्रारम्भ होने जा रहा है। यहाँ प्राचीन आश्रमीय व्यवस्था के अनुसार वेद, निरुक्त, व्याकरण, साहित्यादि विषयों का स्वतन्त्र रूप से गहन अध्ययन के साथ उपाधि लाभ की दृष्टि से प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री, आचार्य (एम० ए० पर्यन्त अध्ययनादि की व्यवस्था सुलभ है।

ये परिक्षायें संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी तथा आर्य विद्यापीठ हरियाणा से सम्बन्धित हैं। ज्ञातव्य है कि उक्त परिक्षाएं राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

प्रमुख विशेषताएं :

१—प्राचीन विषयों के गहन अध्ययन क्रम के साथ आधुनिक विषयों (अंग्रेजी, विज्ञान, गणित आदि) का समुचित परिज्ञान कराया जाता है।

२—प्रारम्भिक छात्रों के लिए जिला परिषद् द्वारा सम्बन्धित बेसिक कक्षाएं (१ से ५ तक) चलायी जाती हैं जिसमें कि अनिवार्यतः धार्मिक व नैतिक शिक्षा समाविष्ट है।

३—विद्युत्तादि सुविधाओं से युक्त गुरुकुल का एकान्त, शान्त सुरम्य वातावरण चित्ताकर्षक है।

प्रतिमाह भोजन व्यय ४०) रु० दुग्ध घृतादि व्यय आवश्यकता-नुसार देय है। प्रवेशार्थी शीघ्र सम्पर्क करें।

—आचार्य

स्त्री नायका विनश्यन्ति नश्यन्ति
बालनायकाः

(१) जिस पार्टी की नेता स्त्री या लड़का होता है वह पार्टी नष्ट हो जाती है जैसे संजय और इन्दिरा का नेतृत्व कांग्रेस के लिए सिद्ध हुआ।

(२) जिसके बहुत नेता होते हैं वह पार्टी भी बहुत दिन नहीं चलती। चाणक्य का यह वचन सही है या गलत यह जनता पार्टी का भविष्य बताएगा।

(३) जिसका कोई नेता नहीं होता वह पार्टी भी डावांड़ोल हो जाती है जैसे आर्यसमाज। इसे सब ऋषि भक्त मिलकर संभालें। जनता ठीक है पर वह बहकी हुई है। किसी एक दिशा में काम अपने हाथ में आप लें, किसी को मैं, किसी को अन्य हमारे साथी। एक आदमी सब काम नहीं कर सकता।

अन्त में एक उदाहरण देकर समाप्त

करता हूं। परोपकारिणी सभा ऋषि के ग्रन्थों और वेद भाष्यों को बहुत कम छापती थी और दोष लगाती थी कि आर्य लोग पढ़ते नहीं कोई खरीदता नहीं है। जनज्ञान ने ऋषि के ग्रन्थों और वेद भाष्यों को धरती पर पाट दिया घर-घर पहुंचा दिया और ग्रन्थ ही नहीं मिलते हैं। अब पढ़ने वाले कहाँ से निकल पड़े परोपकारिणी से पूछो। यह एक उदाहरण काफी है कि आर्य जनता ठीक है नेता नालायक हैं। क्या हमारा आपका यही कर्तव्य है कि भोली बहकाई आर्य-जनता को यों ही मरने दें।

नोट—जिन स्थानों से आपने त्याग-पत्र दिया, उन्हें जनता नासमझ नहीं हो जाना चाहिए कि वे आपका त्याग स्वीकार कर लें। श्री भारतेन्द्रनाथ जी का कर्तव्य है कि दीक्षित जी ने जहाँ-जहाँ से त्यागपत्र दिया हो वहाँ-वहाँ मेरी आवाज पहुंचा दें। धन्यवाद।

जन-ज्ञान का

नया सदस्य बनाकर उसका

शुल्क २०) भिजवाएं

अपना एक वर्ष का शुल्क

२०) भिजवाएं

और

गीता भाष्य	१५)
वन्दना के स्वर	१५)
ज्योतिर्मय	२)
काया-कल्प	२)
ईश्वर अंक	१०)

४४) का साहित्य सुपत उपहार में लें ।
उपहार आपको ३) की V.P.P. से
भेजा जाएगा ।

४०) का M.O. आने पर और अपनी सदस्य संख्या लिखने पर
ही उपहार १५-६-१९७८ तक ही भेजा जाएगा । — सम्पादक

मुख पृष्ठ चित्र परिचय—

—बनारसी सिंह

स्व० पं० गयाप्रसाद शुक्ल

उन्नाव उत्तर प्रदेश का एक ऐसा जिला है जिसका क्रांतिकारी आन्दोलन में महान् योगदान है। इसी जिले के बीघापुर ग्राम में श्री मनराखनलाल शुक्ल के कुल-दीपक के रूप में १८८७ ई० में जन्मे थे श्री गयाप्रसाद शुक्ल।

ग्राम के सुखद समीरण में जन्मे पले और बढ़े गयाप्रसाद, के मन में बाल्यकाल से ही स्वदेश की गुलामी शूल सी कसकती थी। विदेशी राज्यसत्ता से मातृभूमि को मुक्ति दिलाने की लालसा को अपने उर मंदिर में बसाए इस बालक को अंग्रेज सरकार के चाटुकारों से भी घृणा थी। फिरंगी के प्रति मन में बसा आक्रोश एक दिन अपना रंग दिखा गया और ११ वर्ष की आयु के बालक गयाप्रसाद शुक्ल ने एक थानेदार का वध कर उसे परलोक पठा दिया।

बाल्यकाल में ही उन्होंने एक ऐसा उग्र पग उठा लिया था। अतः स्वदेश में रहना सम्भव न समझ कर विदेश की राह ली और फ्रांस एवम् जापान आदि देशों में क्रांतिकारी भारतीय नेताओं से निकट सम्पर्क स्थापित कर क्रांति की देवी को रिज्ञा कर स्वदेश को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने के यज्ञ में सक्रिय रूप से शामिल हो गए।

शारीरिक दृष्टि से अपरिमित बलशाली थे पं० गयाप्रसाद तो आत्मबल भी इतना था कि बाल्यकाल में ही ब्रिटिश सरकार के अधिकारी की हत्या का सुदृढ़ संकल्प किया तो उसे पूर्ण कर ही दिखाया। जहां तक उनकी शारीरिक क्षमता का संबंध है श्री गयाप्रसाद शुक्ल के गुरु आचार्य नरदेव शास्त्री का कथन था कि जब वह राधव नाम से ज्वालापुर गुरुकुल महाविद्यालय में थे तो एक-एक पीपा दूध पी जाते थे। शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टि से सबल श्री गयाप्रसाद शुक्ल का क्रांतिकारियों के मुकटमणी स्वातन्त्र्य वीर सावरकर के साथ भी अत्यन्त निकट का सम्पर्क रहा और विदेशों में भारत माता के जिन वरेण्य सपूतों ने स्वतन्त्रता के महायज्ञ के लिए समिधा संग्रह का सद्कार्य शस्त्राशस्त्रों के संग्रह और उन्हें भारत प्रेषित करने के रूप में किया, उनमें भी आप प्रमुख रहे।

विदेशों में क्रांति कार्यों में निपुणता प्राप्त कर आप १९२४ ई० में भारत पधारे और यहां भी क्रांतिकारी दल से आपका सन्निकट संपर्क आया। महान् हुतात्मा सरदार भगत सिंह एवम् चन्द्रशेखर आजाद की गतिविधियों में भी आप सहयोगी बने तो सामाजिक क्षेत्र में आर्यसमाज की विभिन्न गतिविधियों में भी आपका प्रमुख योगदान रहा। १९२६ में आपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। विवाह भी किया तो जाति-पाति के बंधनों को तोड़ कर और सहधर्मिणी भी मिलीं राष्ट्रकार्य हेतु समर्पित विद्यावती शारदा। विवाह की संघ्या को ही गिरफ्तार हो जाना आपके क्रांतिकारी जीवन का एक प्रेरक पृष्ठ था।

पति पत्नी दोनों ही स्वदेश और स्वजाति के प्रति समर्पण के लिए संकल्प बद्ध। यह मिलन था शौर्य और त्याग का।

अतएव क्रांति यज्ञ में गयाप्रसाद जी का योगदान पूर्ववत् जारी रहा। ब्रिटिश सरकार के गुप्तचरों की दृष्टि भी आप पर अर्हगिंश रहने लगी। दमन और अत्याचार के प्रबल प्रभंजन में भी आपके शौर्य का सुमेरु प्रकम्पित न हुआ। देशभक्ति ही आपका सत्संकल्प था। अतएव १९२९ में एक क्रांतिकारी पडयंत्र में लिप्त होने के संदेह में आपको सतत् ३६ घंटों तक पुलिस के द्वारा उत्पीड़ित किया गया और यह उत्पीड़न भी इतना कि आपका स्वास्थ्य लड़खड़ा गया।

इस प्रकार शरीर विकार ग्रस्त हो गया। जिस हृष्ट पुष्ट शरीर को देखकर बड़े-बड़े बलशाली भी आश्चर्य चकित हो जाते थे, जिसके रौबीले मुखमंडल से अंग्रेज अधिकारी भी सहम उठते थे और जिसे देखकर स्वदेश भवतों के हृदय में विश्वास का स्वतः उद्भव हो उठता था, वही नरसिंह भीतर से टूटने लगा।

धीरे-धीरे शरीर क्षीण होता जा रहा था, किन्तु जिस महावीर ने बाल्यकाल में ही स्वातन्त्र्य की सीता को विदेशी राज्यसत्ता से मुक्ति दिलाने की पावन प्रतिज्ञा ग्रहण की थी, वह जीवन की अन्तिम घड़ी तक स्वातन्त्र्य साधना में ही रत रहा।

अन्ततः महाप्रयाण की बेला आई और बीघापुर में जन्मा यह नरसिंह डलहौजी में १९ अप्रैल, १९३२ को अपना भौतिक शरीर त्याग कर अनन्त में विलीन हो गया। जीवन की अन्तिम घड़ी तक ब्रिटिश सरकार के दो आफीसर आपके निवास स्थान पर तैनात रहे।

शोक ! सहा शोक !!

आर्यसमाज के गौरव, देश के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० परमानन्द जी M.A. M.O.L. का २६ जुलाई को देहान्त हो गया। संस्थान में सभी स्तब्ध रह गए। प्रमु दिवंगत को शान्ति और परिवार को वयं प्रदान करें।

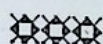
—अग्रधक्ष

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी, हरिद्वार की
औषधियां प्रयोग करें

गुरुकुल कासारि

खांसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग किसी भी कारण से हुई खांसी, नजला, जुकाम आदि में
लाभदायक है। सेवन विधि दिन में तीन बार छोटी चम्मच
लेकर उंगली से चाट।



आंखों के अनेक रोगों के लिए

भीमसेनी सुरमा



च्यवनप्राश

उत्तम स्वादिष्ट रसायन
शरीर को बलिष्ठ और कान्तिमय बनाता।
शारीरिक क्षीणता एवं फेफड़ों के लिए प्रसिद्ध
आयुर्वेद रसायन

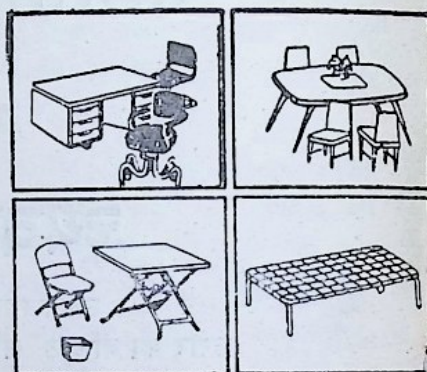
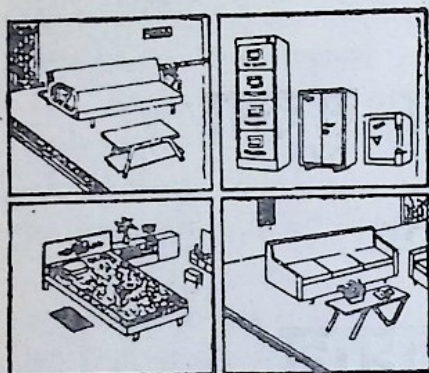
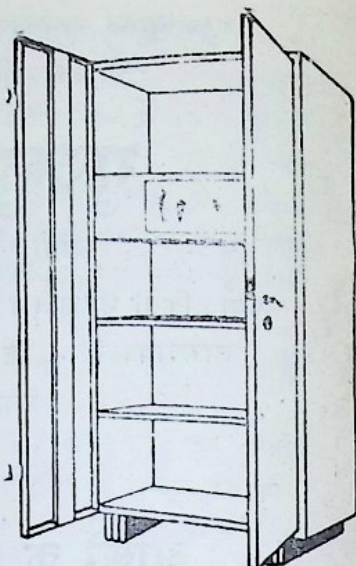
पो. गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी (सहारनपुर)

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ
चाबड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६ फोन नं०—२६१४३८

सुन्दर फरनीचर का प्रगतिशील नाम



वर्षा उपवन व और कार्यकुशलता के कारण आज डिलाईट पक्की अलमारियाँ और फरनीचर सारे भारत में प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह देखने में सुन्दर, मजबूत टिकाऊ और पक्के रंगों में उपलब्ध हैं। महान हो या घर, विवाह हो या कोई शुभ अवसर, यह सबकी शोभा बढ़ाता है। आप भी आज डिलाईट फरनीचर खरीद कर अपने घर, आफिस व दुकान की शोभा बढ़ावें और आनन्द पावें।



डिलाईट सेफ वक्स

कुतुब रोड, दिल्ली-६. फोन 511380

विक्रेता

१. कार्टेज स्टोर, २० विनय नगर मार्केट, नई दिल्ली।
२. काश्मीर क्राफ्टी हाऊस, लक्कड़ बाजार, लुधियाना।
३. मित्तल ब्रादर्स, सिरकी बाजार, भटिण्डा। ४. निहालचन्द गोपालदास, अबोहर।
५. महेन्द्रा ब्रादर्स, कोर्ट रोड, मोगा।
६. जेम सेल्स कार्पोरेशन, सेक्टर ७-सी दु० नं० ३०, मध्य मार्ग, चण्डीगढ़।
७. हरयाणा आयरन एण्ड स्टील इण्डस्ट्रीज, बाजार हिसारिया, सिरसा।
८. लीला इलेक्ट्रिक कं०, ७० कोतवाली रोड, श्री गंगानगर (राज०)।
९. राणा इण्डस्ट्रीज, लाडपुरा बाजार, कोटा (राज०)।
१०. आदर्श इलेक्ट्रिक एण्ड जनरल सप्लायर्स, नैकोली, नीमच (म० प्र०)।
११. ओवरसीज ट्रेड एजेन्सीज, केसरगंज, अजमेर।

आश्चर्य : महान् आश्चर्य

कागज-छपायो सब मंहगा

- फिर भी -

चारों वेदों का हिन्दी भाष्य

२ जिल्दों में : १०१) में

४ जिल्दों में : १२५) में

२५ अगस्त १९७८ तक

आधा धन भेजकर

प्रतियां सुरक्षित कराएँ

प्रबन्धक :

दयानन्द-संस्थान

वेद मन्दिर, शहीद लेखराम नगर, दिल्ली-३६

मुद्रक-प्रकाशक-सम्पादक—पं० राकेशरानी द्वारा स्वस्ति प्रेस,

५, रैगड़ पुरा, नई दिल्ली-११०००५
Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

जन-ज्ञान (मासिक)

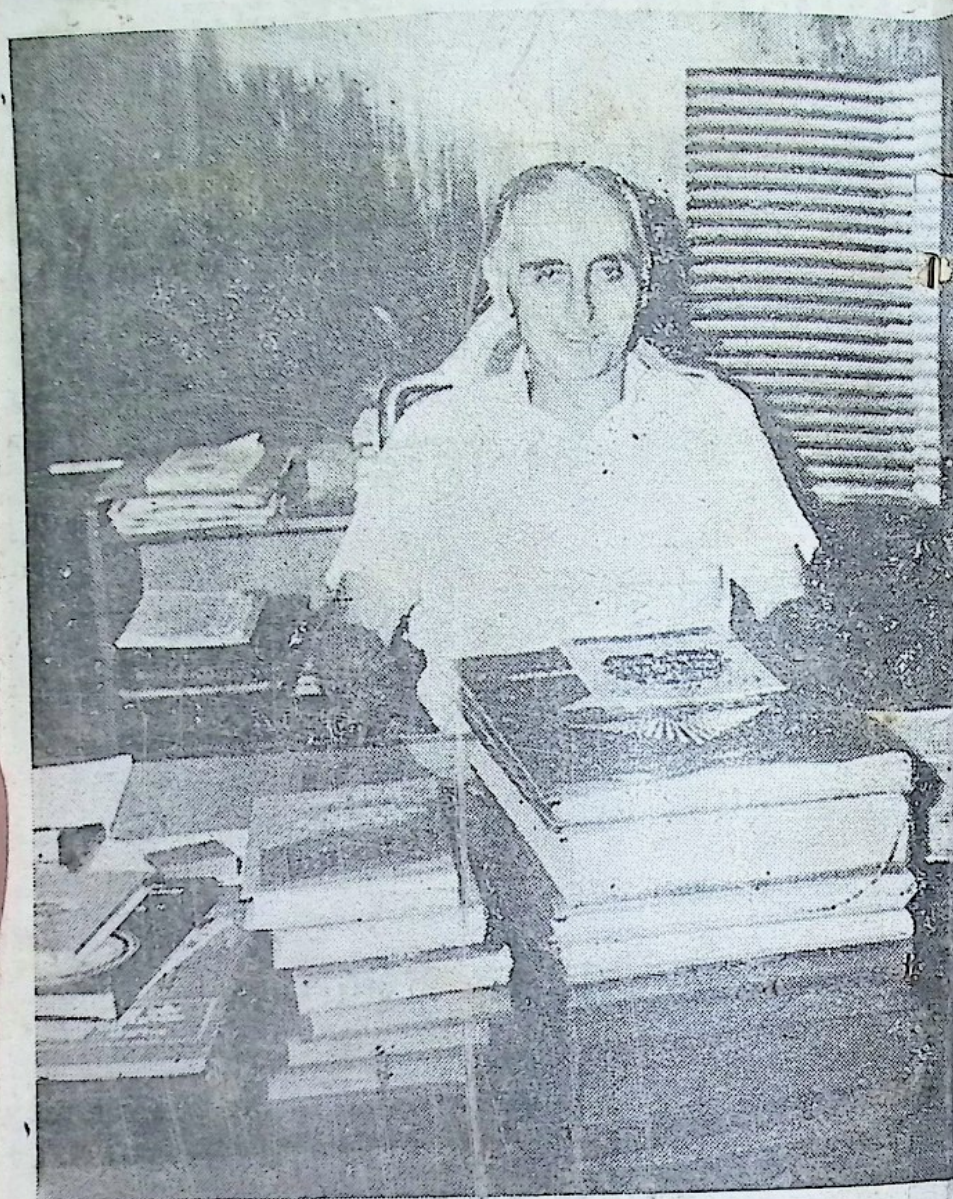
अगस्त

Regd No. D(C) 201

वेद मन्दिर, दिल्ली-३६

१९७८

Regd. No. 107119/75



दिल्ली के उपराज्यपाल श्री दलीप राय कोहली संस्थान द्वारा भेंट किए वैदिक साहित्य के साथ। इस अवसर पर स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने चारों वेदों का हिन्दी भाष्य व श्री रा० सा० चौ० प्रतापसिंह, श्री प्रशान्त वेदालंकार, लक्ष्मीदत्त दीक्षित, श्री अशोक आर्य ने अन्य वैदिक साहित्य भेंट किया।